श्री कीर्तिरत्नसूरि विरचितम्

अथ विद्याविलासकथानकम्

: सम्पादक :

मुनि जयानन्दविजयादि मुनिमण्डल

: प्रकाशक :

गुरुश्रीरामचन्द्र प्रकाशन समिति - भीनमाल

॥ श्रीवर्धमानजिनेन्द्राय नमः ॥

॥ प्रभुश्रीराजेन्द्रसूरीश्वराय नमः ॥

श्री कीर्तिरत्नसूरि-विरचितम्

विद्याविलासकथानकम्

: दिव्याशीष :

श्रीविद्याचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.

मुनिराजश्रीरामचन्द्रविजयजी म.सा.

: संपादक :

मुनिश्रीजयानन्दविजयादिमुनिमण्डलः

: प्रकाशक :

गुरुश्रीरामचन्द्रप्रकाशनसमिति - भीनमाल

: मुख्य संरक्षक :

१) श्री संभवनाथ राजेन्द्रसूरि श्वे.ट्रस्ट कुंदलावारी स्ट्रीट, विजयवाडा

२) मुनिराज श्री जयानन्द विजयजी आदि ठाणा की निश्रा में वि.सं. २०६५ में शत्रुंजय तीर्थे चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस निमित्ते लेहर कुंदन ग्रुप - मुंबई, दिल्ली, चेन्नई, हरियाणा

३) एक सद्गृहस्थ - भीनमाल

४) आर.टी. शाह एन्ड कं. सांबयार स्ट्रीट, चेन्नई.
संघवी उत्तमकुमार संतोषदेवी कुणाल
बेटा पोता रीखबचंदजी ताराजी नागोत्रा सोलंकी - बाकरा (राज.)

प्राक्कथनम्

श्रीमदर्हत्प्रणीतागमे धर्मकथानुयोगस्य बहुमहत्त्वम् विद्यते। एतत्तु अनेन ज्ञापितं भवति यदुत युगप्रधानश्रीआर्यरक्षितस्वामिभिः यदा द्वादशाङ्गनाम् अतीव दुर्धरत्वात् पृथक्रुपेण विभाजनम् कृतम्, तदेतत् चतुर्षु विभाजितानुयोगेषु एको धर्मकथानुयोग इति अन्वर्थीयनाम्ना प्रसिद्धीकृतः षष्ठे श्रीज्ञाताधर्मकथाङ्गे मूलरूपेण सार्धत्रिकोटीकथाः सङ्गृहीता आसन्। कालक्रमे दुर्भिक्षविस्मृत्यादि कारणैः इदानीन्तु स्वल्पा एव अवशेषाः सन्ति । पूर्वमहर्षिभिः बालजीवानामुपकाराय अनेकशः कथा रचिताः, रोचकत्वादल्पप्रयासबोधकत्वाच्च।

संवत २०७० वर्षे चैत्रमासे श्रीभीलडीयातीर्थे श्रीपार्श्वप्रभुसानिध्ये शाश्वतीनवपदाराधनाप्रसङ्गे शास्त्रसंशोधनपरायणाचार्य-प्रवरश्रीमद्विजय मुनिचन्द्रसूरीश्वरैः श्रीअरजिनचरित्रस्य श्रीविद्याविलासकथानकस्य च हस्तलिखितप्रत्याधारे प्रकाशनार्थं प्रेरितः । तत्प्रेरणानुसारेणैव विद्याविलासकथानकस्य प्राप्तहस्तलिखितप्रतेः प्रतिकृतिः अस्पष्टत्वात् अहम्मदाबादनिवासी श्रीजयेशरावलेन अलेखये । पुनास्थिते 'भाण्डारकर ओरियण्टलइन्सटिट्युट' संस्थायाम् सङ्गृहिता अन्यापि हस्तलिखितप्रतेः प्रतिकृतिर्लब्धा।

मद्विनेयदिवंगतमुनिश्रीतत्त्वानंदविजयेन संशोधनकार्ये भृशम् सहाय्यकृतम्, कठिनशब्दानाम् अर्थव्युत्पत्त्योः सूचिः कृता।

प्रेरकाचार्यैः यत्किञ्चित्त्रुटिनिवारणार्थम् सूक्ष्मदृष्ट्यवलोकनम् कृत्वा अन्यद् महदुपकारः कृतः । थरादवास्तव्यो हितेशनामा श्रावकवरोऽपि ज्ञानभण्डारे ग्रन्थशोधनेन, संशोधनेन, प्रतिकृतिप्रेषणेत्यादि अनेकप्रकारैः सहाय्यीभूतः। सोऽपि अनुमोदनपात्रोऽस्ति।

अस्मिन् कथानके जीवनोपयोग्युपदेशात्मकानेकाश्चिन्तनीया, आचरणीया विचारश्रेणयः सन्ति । पाठकैः तद्दृष्टिकोणेन एतद्ग्रन्थस्य अधिकाधिकप्रयोगेन स्वजीवनम् समुज्जवलम् कर्तव्यम्।

विद्वज्जनैः त्रुटयः क्षन्तव्या ज्ञापितव्याश्च।

भवदीयः

जयानन्दः

संरक्षक

1. सुमेरमल केवलजी नाहर, भीनमाल, राज. के. एस. नाहर,
201 सुमेर टॉवर्स, लवलेन, मझगाँव, मुम्बई-10.
2. मीलियन ग्रुप, सूराणा, राज. मुंबई, दिल्ली, विजयवाडा
3. एम.आर. इम्पेक्स, 16-ए हनुमान टेरेस, दूसरा माला, तारा टेम्पल लेन लेमीग्टन रोड, मुंबई-7. फोन- 2380 1086.
4. श्री शांतिदेवी बाबुलालजी बाफना चेरीटेबल ट्रस्ट, मुंबई, महाविदेह भीनमालधाम, पालीताना, 364270
5. संघवी जुगराज, कांतिलाल, महेन्द्र, सुरेन्द्र, दिलीप, धीरज, संदीप, राज, जैनम, अक्षत बेटा पोता कुंदनमलजी भुताजी श्री श्रीमाळ वर्धमान गौत्रीय आहोर (राज.) कल्पतरु ज्वेलर्स, 305 स्टेशन रोड, संघवी भवन, थाना, (5) महाराष्ट्र
6. विजुबेन चिमनलाल, शांतिभाई डाहयालाल, मोंघीबेन अमृतलाल दोशी के स्मरणार्थे अनीलभाई, निकिताबेन ए, नैनाबेन डी, शिल्पाबेन एन के मासक्षमण एवं दीपकभाई, निलांगभाई, नैनाबेन, भव्याकुमारी के वर्षीतप अनुमोदनार्थे अमृतलाल चिमनलाल दोशी पांचशो वोरा परिवार, थराद (मुम्बई)।
7. शत्रुंजय तीर्थे नव्वाणुं यात्रा के आयोजन निमित्ते शा. जेठमल, लक्ष्मणराज, पृथ्वीराज, प्रेमचन्द, गौतमचंद, गणपतराज, ललीतकुमार, विक्रमकुमार, पुष्पक, विमल, प्रदीप, चिराग, नितेष बेटा-पोता कीनाजी संकलेचा परिवार मेंगलवा, फर्म-अरिहन्त नोवेल्हटी, जी.एफ-3 आरती शोपींग सेन्टर, कालुपुर टंकशाला रोड, अहमदाबाद.
8. थराद निवासी भणशाळी मधुबेन कांतिलाल अमुलख भाई परिवार
9. शा कांतिलाल केवलजी गांधी सियाना निवासी द्वारा 2062 में पालीताना में उपधान करवाया उस निमित्ते।
10. लहेर कुंदन ग्रुप, शा जेठमलजी कुंदनमलजी मेंगलवा (जालोर)

11. 2063 में चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस समय पद्मावती सुनाने के उपलक्ष में शा चंपालाल, जयंतिलाल, सुरेशकुमार, भरतकुमार प्रिन्केश, केनित, दर्शित, चुन्नीलालजी मकाजी कासम गौत्र त्वर परिवार गुड़ा बालोतान्
'जय चिंतामणी' 10-543 संतापेट नेल्लूर (आ.प्र.)

12. पू. पिताश्री पूनमचंदजी मातुश्री भुरीबाई के स्मरणार्थे पुत्र पुखराज, पुत्रवधु लीलाबाई पौत्र फुटरमल, महेन्द्रकुमार, राजेन्द्रकुमार अशोक कुमार, मिथुन, संकेश, सोमील, बेटा पोता परपोता शा पूनमचंदजी भीमाजी रामाणी गुडाबालोतान्
नाकोडा गोल्ड, 70 कंसारा चाल, बीजा माले रुम नं. 67, कालबादेवी मुंबई

13. शा सुमेरमल, मुकेशकुमार, नितीन, अमीत, मनीषा, खुशबु बेटा पोता पेराजमलजी प्रतापजी रतनपुरा बोहरा परिवार, मोदरा (राज.)
राजरतन गोल्ड प्रोड., के.वी.एस. कोम्पलेक्ष, 3/1 अरुंडलपेट, गुन्टूर.

14. एक सद् गृहस्थ, धाणसा

15. गुलाबचंद डॉ.राजकुमार, निखिलकुमार बेटा पोता परपोता छगनलालजी प्रेमाजी कोठारी अमेरीका, आहोर (राज.) 4341 स्कैलेन्ड ड्रीव, अट्लांटा, जोर्जीया, U.S.A - 30342. Ph. : 404-432-3086, 678-521-1150

16. शांतिरुपचंद रवीन्द्रचंद्र, मुकेश, संजेश, ऋषभ, लक्षित, यश, ध्रुव, अक्षय बेटा पोता मिलापचंदजी मेहता, जालोर-बेंगलोर.

17. वि. सं. 2063 में आहोर में उपधान तप आराधना करवायी एवं पद्मावती श्रवण के उपलक्ष में पिताश्री थानमलजी मातुश्री सुखीदेवी, भंवरलाल, घेवरचंद, शांतिलाल, प्रवीणकुमार, मनीष, निखिल, मित्तुल, आशीष, हर्ष, विनय, विवेक बेटा पोता कनाजी हकमाजीमुथा
शा. शांतिलाल प्रवीणकुमार एण्ड को. राम गोपाल स्टीट, विजयवाडा

18. बाफना वाडी में जिन मन्दिर निर्माण के उपलक्ष में मातुश्री प्रकाशदेवी चंपालालजी की भावनानुसार पृथ्वीराज, जितेन्द्रकुमार, राजेशकुमार, रमेशकुमार, वंश, जैनम, राजवीर, बेटा-पोता चंपालालज सांवलचन्दजी बाफना, भीनमाल. नवकार टाइम, 59, नाकोडा स्टेट न्यू बोहरा बिल्डींग, मुंबई - 3.

19. शा शांतिलाल, दीलीपकुमार, संजयकुमार, अमनकुमार, अखीलकुमार बेटा पोता मूलचंदजी उमाजी तलावत आहोर (राज.)
राजेन्द्र मार्केटींग, पो.बो. नं. 108, विजयवाडा.

20. श्रीमती सकुदेवी सांकलचंदजी नेथीजी हुकमाणी परिवार, पांथेडी, राज.
राजेन्द्र ज्वेलर्स, 4 रहेमान भाई बि.एस.जी. मार्ग, ताडदेव, मुंबई-34.

21. पुज्य पिताजी श्री सुमेरमलजी की स्मृति में मातुश्री जेठीबाई की प्रेरणा से जयन्तिलाल,महावीरचंद,दर्शनकुमार, बेटा-पोता सुमेरमल वरदीचंदजी वाणीगोता परिवार आहोर, चेन्नई । जे.जी. इम्पेक्स प्रा. लि. 55 नारायण मुदली स्ट्रीट चेन्नई 79.

22. स्व. हस्तीमलजी भलाजी नागोत्रा सोलंकी स्मृति में हस्ते परिवार बाकरा(राज.)

23. मु. श्री जयानंद विजयजी आदि की निश्रा में चातुर्मास एवं उपधान शत्रुंजय तीर्थेकरवाया लहेर कुंदन ग्रुप श्रीमती गेरोदेवी जेठमलजी बालगोता परिवार मेंगलवा निवासी ने उस समय आराधक एवं भक्त जनों की साधारण की राशी में से सवं 2065.

24. मातुश्री मोहनीदेवी पिताश्री सोवलचन्दजी कि पुण्य स्मृति में शा. पारसमल, सुरेशकुमार, दिनेशकुमार, कैलाशकुमार, जयंतकुमार, बिलेष, श्रीकेष, दिक्षित, प्रीष, कबीर, बेटा-पोता सोवलचन्दजी कुंदनमलजी मेंगलवा (राज.)
फर्म: फाईब्रोस कुंदन ग्रुप, 35 पेरूमाल मुदाली स्ट्रीट, साहुकारपेट, चेन्नई

25.शा. सुमेरमलजी नरसाजी – मेंगलवा, मेटल एण्ड मेटल,
नं. 136, गोविन्दापा नायकन स्ट्रीट, चेन्नई.

26.शा दूधमल, नरेन्द्रकुमार,रमेशकुमार बेटा बोता लालचंदजी मांडोत परिवार बाकरा (राज.) मंगल आर्ट, दोशी बिल्डींग 3-भोईवाडा,भूलेश्वर,मुंबई - 2.

27. कटारीया संघवी लालचंद, रमेशकुमार, गोतमचंद, दिनेशकुमार, महेन्द्रकुमार, रवीन्द्रकुमार बेटा पोता सोनाजी भेराजी धाणसा (राज.)
श्री सुपर स्पेअर्स, 11-32-3 ए पार्क रोड, विजयवाडा, सिकन्द्रबाद.

28.शा नरपतराज, ललीतकुमार महेन्द्र, शैलेष, निलेष, कल्पेश, राजेश, महीपाल, दिक्षीत, आशीष, केतन, अश्वीन, सींकेश, यश बेटा पोता खीमराजजी थानाजी कटारीया संघवी आहोर (राज.) कलांजली ज्वेलर्स, 4/2, ब्राडी पेठ, गुन्टूर-2.

29.शा लक्ष्मीचंद, शेषमल, राजकुमार, महावीरकुमार, प्रवीणकुमार, दीलीपकुमार, रमेशकुमार बेटा पोता प्रतापचंदजी कालुजी कांकरीया, मोदरा (राज.) गुन्टूर.

30. एक सद्‌गृहस्थ (खाचरौद)

31. श्रीमती सुआदेवी घेवरचंदजी के उपधान निमित्ते चंपालाल, दिनेशकुमार, धर्मेन्द्रकुमार, हितेशकुमार, दिलीप, रोशन, नीखील, हर्ष, जैनम, दिवेश बेटा पोता घेवरचंदजी सरेमलजी दुर्गाणी बाकरा. हितेन्द्र मार्केटींग, 11-X-1 काशी चेटी लेन, सत्तर शाला कोम्प्लेक्स, पहला माला, चेन्नई-89.

32. मंजुलाबेन प्रवीणकुमार पटीयात के मासक्षमण एवं स्व. श्री मंवरलालजी की स्मृति में प्रवीणमुकार, जीतेशकुमार, चेतन, चिराग, कुणाल, बेटा पोता तिलोकचंदजी धर्माजी पटियात धाणसा - मुंबई
पी.टी. जैन, रोयल सम्राट, 406-सी वींग, गोरेगांव (वेस्ट) मुंबई-62.

33. गोल्ड मेडल इन्डस्ट्रीस प्रा. ली., रेवतडा, मुम्बई, विजयवाडा, दिल्ली जुगराज ओटमलजी, ए 301/302, वास्तु पार्क, मलाड (वे), मुंबई.

34. राज राजेन्द्रा टेक्सटाईल्स एक्सपोर्टस लिमीटेड 101, राजभवन, दौलतनगर, बोरीवली (ईस्ट), मुम्बई, मोधरा निवासी.

35. प्र.शा.दी.सा.श्री मुक्ति श्रीजी की शिष्या वि.सा. श्री मुक्तिसर्शिता श्रीजी की प्रेरणा से स्व. पिताजी दानमलजी, मातुश्री तीजोदेवी की पुण्य स्मृति में चंपालाल, मोहनलाल, महेन्द्रकुमार, मनोजकुमार, जितेन्द्रकुमार, विकासकुमार, रविकुमार, रिषभ, मिलन, हितिक, आहोर (राज.)
कोठारी मार्केटींग 10/11, चितुरी कोम्प्लेक्ष, विजयवाडा-1.

36. पिताजी श्री सोनराजजी, मातुश्री मदनबाई कटारिया संघवी परिवार आयोजित सम्मेत शिखर यात्रा प्रवास एवं जीवित महोत्सव निमित्ते दीपचंद, उत्तमचंद, अशोककुमार, प्रकाशकुमार, राजेशकुमार, संजयकुमार, विजयकुमार, बेटा-पोता सोनराजजी मेघाजी-धाणसा - पुना. अलका स्टील, 858, भवानी पेठ, पुना-52

37. मु. श्री जयानंद विजयजी आदि ठाणा की निश्रा में 2062 में पालीताणा में चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस निमित्ते श्रीमती हंजादेवी सुमेरमलजी नागोरी, शांतिलाल, बाबुलाल, मोहनलाल, अशोककुमार, विजयकुमार आहोर/बेंगलोर

38. मु. श्री जयानंद विजयजी आदि ठाणा की निश्रा में 2066 में तीर्थेन्द्र नगर बाकरारोड में चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस निमीत्ते श्रीमती मेतीदेवी पेराजमलजी रतनपुरा बोहरा परिवार, मोधरा/गुंटूर.

39. संघवी कान्तीलाल, जयंतीलाल, राजकुमार, राहुलकुमार एवं समस्थ श्री श्री श्रीमाल गुडाल गोत्र फुआनी परिवार आलासण (राज) संघवी इलेक्ट्रीक कंपनी 85, नारायण मुदाली स्ट्रीट, चेन्नई - 79.

40. संघवी भंवरलाल, मांगीलाल, महावीर, नीलेश, बन्टी बेटा- पोता हरकचंदजी
श्री श्रीमाल परिवार, आलासन
राजेश इलेक्ट्रीकल्स, 48 राजा बिल्डींग, तिरुनेलवेली -627 001.

41. शा. कान्तीलालजी मंगलचन्दजी हरण, दाँसपा, सी 103/104,
वास्तु पार्क, एवर साइन नगर, मलाड (वे), मुंबई-64.

42. शा. भंवरलाल, सुरेशकुमार, शैलेषकुमार, राहुल बेटा-पोता तेजराजजी संघवी
कोमतावाला भीनमाल (राज). राजरतन इलेकट्रीकल्स, के.सी.आई.वायर्स प्रा.लि.
162, गोवीन्दाप्पा नायकन स्ट्रीट, चेन्नई - 600 001.

43. शा समरथमल, सुकराज, मोहनलाल महावीरकुमार, विकासकुमार,
कमलेश, अनिल,विमल, श्रीपाल, भरत फोला मुथा परिवार सायला (राज.)
अरुण एन्टरप्राईजेस, 4 लेन, ब्राडी पेठ, गुन्टूर-2.

44. शा.गजराज,बाबुलाल,मीठालाल,भरत,महेन्द्र,मुकेश,शैलेष,गौतम,
नीखील, मनीष, हनी बेटा पोता, रतनचंदजी, नागोत्रा सोलंकी साँथू (राज)
फूलचंद भंवरलाल, 108 गोवींदप्पा नायक स्ट्रीट, चेन्नई-1.

45. भंसाली भंवरलाल, अशोकुमार,कांतिलाल,गोतमचंद, राजेशकुमार, राहुल,
आशीष, नमन, आकाश, योगेश, बेटा पोता लीलाजी कसनाजी मु. सरत.
मंगल मोती सेन्डीकेट, 14/15 एस. एस. जैन मार्केट,
एम.पी. लेन चीकपेट क्रोस, बेंगलोर - 53.

46. बल्लु गगलदास वीरचंदभाई परिवार थराद / मुंबई.

47. श्रीमती मंजुलादेवी भोगीलाल वेलचन्द संघवी धानेरा
फेन्सी डाइमण्ड 11, श्रीजी आरकाड, प्रसाद चेम्बर्स नी पाछल
टाटा रोड, नं. 1-2, ओपेरा हाउस, मुंबई-4.

48. देसाइ शांतिलाल, उत्तमचन्द, विनोदभाई, धीरजभाई, सेवंतिभाई, थराद-मुंबई

49. बन्दामुथा शांतिलाल, ललितकुमार, धर्मेश, मितेश बेटा पोता मेघराजजी फूसाजी
नं. 43, आइदाप्पा, नामकन स्ट्रीट साहुकारपेट, चेन्नई-79.

50. श्रीमतीबदामीदेवी दीपचन्दजी गेनाजी मांडवला (राज.)
चेन्नई निवासी के प्रथम उपधान तप निमीते हस्ते सह परिवार

51. आहोर से आबू देलवाडा तीर्थ का 6 रि पालित संघ निमीत्ते एवं सुपुत्र महेंद्रकुमार की स्मृति में संघवी मुथा मेघराज, कैलाशकुमार, राजेशकुमार, प्रकाशकुमार, दिनेशकुमार, कुमारपाल, करण, शुभम, मिलन, मेहुल, मानव, बेटा-पोता सुगालचन्दजी लालचन्दजी लुंकड परिवार, आहोर (राज.)
फर्म: मैसुर पेपर सप्लायर्स, नं 5, श्रीनाथ बिल्डींग, सुलतानपेट सर्कल, बेंगलोर-53.

52. एक सदग्रहस्थ, बाकरा (राज.)

53. स्व. पिताश्री हिराचंदजी स्व. मातृश्री कुसुमबाई स्व. ज्येष्ठ भ्राताश्री पृथ्वीराजजी, श्री तेजराजजी के आत्मश्रेयार्थे मुथा चुन्निलाल, चन्द्रकुमार, किशोरकुमार, पारसमल, प्रकाशकुमार, जितेन्द्रकुमार, दिनेशकुमार, विकाशकुमार, कमलेश, राकेश, सन्नि,अशिष, नीलेश, अंकुश, पुनीत, अभिषेक, मोन्टु, नितिन, आतिश, निल, महावीर, जैनंम, परम,तनमै,प्रनै,बेटा पोता परपोता लडपोता हिराचन्दजी चमनाजी दांतेवाडिया परिवार, मरुधर मे आहोर (राज.) हीरा नोवेल्टीस, फ्लवर स्ट्रीट,बल्लारी

54. थराद निवासी मुमुक्षु दिनेश भाई हालचन्द भाई अदाणी ना दीक्षा निमिते आवेल बहुमान नी राशी मां थी हस्ते हालचन्द भाई वीरचन्दभाई अदाणी एवं समस्त परिवार

55. माईनॉक्स मेट्ल प्रा.लि. नं. 7, पी.सी लेन, एस.पी रोड क्रॉस, बेंगलोर-मरुधर मे सायला (राज) बेंगलोर, मुम्बई, चेन्नई, अहमदाबाद

56. श्रीमती प्यारी देवी भेरमलजी जेठाजी श्री श्री श्रीमाल अग्नीगोता परिवार अमरसर (सरत) राज.बाकरा रोड में चातुर्मास एवं उपधान तप निमिते हस्ते संघवी भवरलाल, अमीचन्द, अशोककुमार, दिनेशकुमार। फर्म: अम्बीका ग्रूप, विजयवाडा (ए.पी)

57. सुआबाई ताराचंदजी, वाणीगोता परिवार, बागोडा (राज)
फर्म: बी-ताराचंद एण्ड को. ए-18, भारत नगर, ग्रान्ट रोड, मुंबई - 7

58. २०६९ मे मुनि श्री जयानंदविजयजी की निश्रा में श्री बदामीबाई,तेजराजजी आहोर श्री इन्द्रादेवी रमेशकुमारजी गुडा बालोतान एवं श्री मुलीबाई पूनमचंदजी, साँथू तीनो ने पृथक-पृथक नव्वाणु यात्रा करवायी, उस समय आयोजक एवं आराधकों की और से नव्वाणुं यात्रा की राशी में से (पालीताणा)

59. शा जुगराज फुलचंदजी एवं अ.सौ.कमलादेवी जुगराजजी श्री श्री श्रीमाल चंद्रावण गोत्र के जीवित महोत्सव एवं पद्मावती सुनाई के प्रसंगे पुत्र किर्तीकुमार,महेन्द्रकुमार, निरंजनकुमार, राजेशकुमार, पौत्र अमित, कलपेश, परेश, मेहुल,वंश एवं समस्थ श्री श्री श्रीमाल चंद्रावण परिवार आहोर (राज.)
फर्म: महावीर पेपर एण्ड जनरल स्टोर्स 22-2-6, क्लोथ बजार, गुंटुर (ए.पी)

60. शा जुगराज, छगनलाल, भंवरलाल, दुरगचन्द, धेवरचन्द, दिनेशकुमार, विजयराज, महावीरचंद, विक्रमकुमार, विकाशकुमार, सुरेशकुमार, गौतमचंद, नितेष, विशाल,धृव पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र मातृश्री सुखीबाई मिश्रीमलजी सालेचा परिवार, धाणसा (राज.)
फर्म : श्री राजेन्द्रा होजरी सेन्टर, न. 11, बी. बी. टी. स्टीट, मामुलपेट, बेंगलोर -53

61. श्री तीर्थेनन्द्र नगर तीर्थे 2070 वर्षे श्री पंचमंगल महा श्रुत स्कंघ उपघान तप आराधना निमिते संघवी श्रीमती पातीदेवी भारतमलजी भगाजी वेदमुथा सुपुत्र माँगीलाल, गणपतचन्द, रमेशकुमार, कैलाशकुमार, सुपौत्र ललित, मुकेश, निर्मल, दिनेश, प्रवीण, राजेश, संजय, अरविंद, विक्रम, युवराज, जितेश परिवार, रेवतडा – बेंगलोर.
फर्म : शा. सुमेरमल मांगीलाल, मामुलपेट, बेंगलोर - 560 053.

: सह संरक्षक :

1. शा तीलोकचंद मयाचंद एन्ड कं. 116, गुलालवाडी, मुंबई - 4.
2. स्व. मातृश्री मोहनदेवी पिताजी श्री गुमानमलजी की स्मृति में
   पुत्र कांतिलाल, जयन्तिलाल, सुरेश, राजेश सोलंकी, जालोर
   प्रविण एण्ड कं. 15-8-110/2, बेगम बाजार, हैदराबाद - 12.
3. मेहता सुबोधभाई उत्तमलाल, धानेरा / कोलकत्ता
4. पूज्य पिताजी ओटमलजी एवं मातृश्री अतीयो बाई एवं धर्मपत्नि पवनी देवी के
   आत्म श्रेयार्थ किशोरमल, प्रवीणकुमार (राजु), अनिल, विकास, राहुल, संयम,
   ऋषभ, डोसी चौपडा परिवार, आहोर फर्म : श्री राजेन्द्र स्टील हाउस– गुंटूर– ए.पी
5. पूज्य पिताजी शा प्रेमचन्दजी छोगाजी कि स्मृति में मातुश्री पुष्पादेवी
   सुपुत्र दिलीप, सुरेश, अशोक, संजय वेदमुथा, रेवतडा (राज.)
   श्री राजेंद्र टॉवर्स, नं 13, समुद्र मुदाली स्ट्रीट, चेन्नई
6. गाँधी मुथा स्व. मातृश्री पानीबाई एवं पुज्य पिताश्री पुखराजजी की स्मृती में पुत्र
   गोरमल,भागचन्द, निलेश, महावीर, वीकेन, मिथुन, रिषभ, योनिक बेटा पोता
   पुखराजजी समनाजी गेनाजी, सायला (राज.)
   फर्म : वैभव ए टू जेड डॉलर शॉप, वास्वी महल रोड, चित्रदुर्गा 577 501. कर्नाटका
7. शांतीदेवी मोहनलालजी के उपधान वर्षीतप आदि तपश्चर्या निमिते हस्ते मोहनलाल,
   विकास, राकेश, धन्या बेटा पोता गणपतचन्दजी सोलंकी, जालोर (राज.)
   फर्म : शांती इम्पोर्ट्स 11-54-42 नंदी पाटीवारी स्ट्रीट, विजयवाडा (ए.पी)
8. पूज्य पिताजी मनोहरमलजी के आत्म श्रेयार्थे मातृश्री पानीदेवी के उपधान तप निमिते
   हस्ते सुरेशकुमार, दिलीपकुमार, मुकेशकुमार, ललितकुमार श्री श्री श्रीमाल
   गुडाल गोत्र नेथाजी परिवार, आलासन (राज.)
   फर्म : एम.के लाईट्स, 897 अविनाशी रोड, कोईम्बटूर –641 018.
9. स्व. पूज्य पिताजी श्री मानमलजी भीमाजी क्षत्रिया बोहरा कि स्मृति में
   हस्ते मातृश्री सुआबाई सुपुत्र मदनराज, महेन्द्रकुमार, भरतकुमार, नितिन,
   स्लोक, सयंम, दर्शन एवं समस्त क्षत्रिया बोहरा परिवार, सुराणा (राज.)
   कोईमबटूर/मुम्बई।

10. शा. ताराचन्द भोनाजी आहोर

फर्म : मेहता नरेशकुमार एन्ड कुं. पहला भोईवाडा लेन, मुंबई - 400 002.

11. 1992 मे बस यात्रा प्रवास, 1995 में अठ्ठाई महोत्सव एवं संघवी सोनमलजी के आत्मश्रेयार्थे नाणेशा परिवार के प्रथम सम्मेलन के लाभ के उपलक्ष में संघवी भबुतमल, जयंतिलाल, प्रकाशकुमार, प्रविणकुमार, नवीन, राहुल, अंकुश, रितेष एवं समस्थ नाणेशा परिवार, सियाणा (राज) फर्म : प्रकाश नोवेलटीज्, सुंदर फर्नीचर्स, नं. 714, सदाशीव पेठ, बाजीराव रोड, पूना - 411 030

12. स्व. पू पिताजी श्री पीरचंदजी एवं स्व भाई श्री कान्तिलालजी की स्मृति में माताजी पातीदेवी पीरचंदजी पुत्र हस्तीमल, महावीरकुमार, संदीप प्रदीप, विक्रम, निलेष, अभीषेक, अमीत, हार्दिक, मानू, तनिश, यश, पक्षाल, नीरव, बेटा पोता परपोता पीरचंदजी केवलजी भडांरी-बागरा (राज)

फर्म : पीरचंद महावीरकुमार मैन बाजार गुंटूर (ए.पी)

13. सियाणा से बसो द्वारा शत्रुंजय - शंखेश्वर, छ रि पालित यात्रा संघ 2065 हस्ते संघवी प्रतापचंद, मूलचंद, दिनेशकुमार, हितेशकुमार, निखील, पक्षाल बेटा पोता पुखराजजी बालगोता सियाणा (राज) फर्म : जैन इन्ट्रनेशनल, नं. 95 गोवींदाप्पा नायकन स्ट्रीट, चैनई (टी.एन)

14. स्व. पू. पि. शांतिलाल चीमनलाल बलु मातुश्री मधुबेन शांतिलाल, अशोकभाई, सुरेखाबेन आदीकुमार, थराद. अशोकभाई शांतिलाल शाह, नं. 201',कोश मोश आपार्टमेंट, भाटीया स्कूल के सामने, साई बाबा नगर, बोरीवली(प), मुम्बई-400072

15. शा. जीतमलजी अन्नाजी, मु.पो. नासोली, वाया : भीनमाल, जिला : जालोर (राज.) दादर / मुम्बई. फर्म : अशोका गोल्ड, '7' काका साहेब गाडगील मार्ग, खेड गली, प्रभादेवी, मुम्बई - 400025.

16. हिम्मतराज, सुरेश, अरविन्द, तनेश, दिव्य कटारीया संघवी बेटापोता गणेशमलजी कनाजी, सांचौर (राज.) फर्म : एम्पायर मेटल्स इन्डिया, मुंबई

17. श्रीमति पूज्य मातुश्री विमलाबाई एवं पिताश्री मिश्रीमलजी की पावन स्मृति में पुत्र राजेशकुमार मिश्रीमलजी मगाजी सालेचा, मोधरा (राज.)

फर्म : राजगुरु इन्टरप्राईज, चैनई (टी.एन)

प्राप्ति स्थान

शा. देवीचंद छगनलालजी

सुमति दर्शन, नेहरू पार्क के सामने,
माघ कोलोनी, भीनमल–343 029 (राज)
फोन : (02969) 220 387

श्री आदिनाथ राजेन्द्र जैन पेढी

साँथू - 343 026
जिला : जालोर (राज.)
फोन : 02973 - 254 221

महाविदेह भीनमाल धाम

तलेटी हस्तिगिरि, लिंक रोड,
पालीताणा – 364 270
फोन : (02848) 243 018

श्री विमलनाथ जैन पेढी

बाकरा गाँव– 343 025 (राज.)
फोन : 02973 - 251 122
/ 94134 65068

श्री सीमंधर जिन राजेन्द्र सूरि मंदिर

शंखेश्वर तीर्थ मंदिरजी के सामने,
शंखेश्वर, जि. पाटण (गुजरात)

श्री तीर्थेन्द्र सूरि स्मारक संघ ट्रस्ट

तीर्थेन्द्र नगर, बाकरा रोड – 343 025
जिला–जालोर (राजस्थान)
फोन : 02973 251 144

"श्री कीर्तिरत्नसूरि विरचितम्"

॥ अथ विद्याविलासकथानकम् ॥

धर्माज्जन्म कुले शरीरपटुता सौभाग्यमायुर्बलम् ।
धर्मेणैव भवन्ति निर्मलयशोविद्यासम्पत्तयः ॥
कान्ताराच्च महाभयाच्च सततं धर्मः परित्रायते ।
धर्मः सम्यगुपासितो भवति हि स्वर्गापवर्गप्रदः ॥१॥

द्वीपेऽत्र भरतक्षेत्रे, श्री-युगादि-जिनेशितुः ।
अवन्तीवर्धनो नाम, तनयः समभूत् पुरा ॥२॥

तन्नाम्ना विश्वविख्यातोऽवन्तीदेशोऽस्ति सौख्यदः ।
तत्र चोज्जयनी ख्याता, पुरी सुरपुरी-निभा ॥३॥

छत्रेषु दण्डाश्च करेषु बन्धः सारिषु मारिश्च मदो गजेषु ।
हारेषु च च्छिद्रविलोकनानि कन्याविवाहे करपीडनं च ॥४॥

अवन्तिसेन-भूपालो, भूपालगुणराजितः ।
गुणमाला प्रिया तस्य, गुणमालेव विश्रुता ॥५॥ यदुक्तम्-

राजा स एव लोके त्यागः शौर्यं च विद्यते यस्य ।
अभिषेकपट्टबन्धनवातव्यञ्जनं व्रणस्यापि ॥६॥

श्रेष्ठी धनावहश्चाऽभूद्, धनेन धनदोपमः ।
अवन्तिसेनभूपस्य, प्रीतिपात्रमभूत्तदा ॥७॥

प्रिया तस्यास्ति पद्मश्री, पद्मेव हि वपुष्मती ।
प्रतिपच्चन्द्रलेखेव, निष्कलङ्का च याऽजनि ॥८॥

धनसारो गुणसारः, सागरो धनसागरः ।
तयोरेतेऽभवन् पुत्राश्चत्वारश्चोत्तरोत्तराः ॥९॥

रूपलावण्य-सौभाग्य-गुणैरतिमनोहरान् ।
स्वसुतान् परितो नित्यं, रममाणान् ददर्श सः ॥१०॥

तान् दृष्ट्वा हृष्टचित्तोऽसौ, श्रेष्ठी चित्ते व्यचिन्तयत् ।
धन्योऽहं कृतपुण्योऽहं, यस्येदृशाः सुता इमे ॥११॥

पुत्रस्यार्थेऽखिलो लोकः, खिद्यमानोऽत्र दृश्यते ।
मम पुण्यप्रभावेन, निर्विघ्नेनाऽभवन् सुताः ॥१२॥ यदुक्तम्-

"सुविनयास्तनया दयिता हिता,
नयभवो विभवोऽनुगुणा मताः ।
नृपकुले गुरुता विमलं यशो,
भवति पुण्यतरोः फलमीदृशम् ॥१३॥"

पुत्राः पुण्यप्रभावेन, भवन्ति धनिनामपि ।
तदा तेषां च साफल्यं, गृहभारं वहन्ति ये ॥१४॥

ते पुत्रा ये पितुर्भक्ता, भारोद्वहनकर्मठाः ।
जनक-स्कन्धदेशस्थां, धुरामुत्तारयन्ति च ॥१५॥

एकोऽपि स सुतः श्लाघ्यः, सर्वभारक्षमोऽपि यः ।
यत्प्रसादाच्च पितरौ, निश्चिन्तौ भवतः सदा ॥१६॥ यदुक्तम्-

एकेनाऽपि सुपुत्रेण, सिंही स्वपिति निर्भयम् ।
सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति गर्दभी ॥१७॥

अन्यथा भाररूपास्ते, ऋणसम्बन्धिनोऽपि वा ।
गुणाः कलाऋद्धयोऽपि, विश्राम्यन्ति न येष्वपि ॥१८॥

यदुक्तम्-

किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसन्तापकारकैः ।
वरमेकः कुलालम्बी, यत्र विश्राम्यते कुलम् ॥१९॥

अत एव मत्सुतानां, बुद्धिमालोकयाम्यहम् ।
कश्च केनाप्युपायेन, मद्धुरं निर्वहिष्यति ॥२०॥

चिन्तयित्वेति स श्रेष्ठी, गृहमागत्य सत्वरम् ।
रममाणान् सुताँस्ताँश्चाऽऽकार्य स्वस्थमनास्ततः ॥२१॥

उपविश्योचिते स्थाने, श्रेष्ठ्यूचे स्वसुतानिति ।
कः पुत्रः कर्मणा केन, धरिष्यति धुरं मम ? ॥२२॥ युग्मम्-

ततो ज्येष्ठोऽप्यभाषिष्ट, व्यवसायेन तातवत् ।
कृत्वा द्रव्यार्जनमहं, धरिष्यामि धुरं तव ॥२३॥

तदाऽऽकर्ण्य प्रहृष्टोऽसौ, द्वितीयं स्माह नन्दनम् ।
अथाऽवदद् द्वितीयोऽपि, ताताऽऽकर्णय मद्वचः ॥२४॥

वस्तुभिः पोतमापूर्य, गत्वा द्वीपे जलाऽध्वना ।
ततो भूरि धनं लात्वा, धरिष्यामि धुरं तव ॥२५॥ यदुक्तम्-

गन्तव्यं नगरशतं विज्ञानशतानि शिक्षितव्यानि ।
भूपतिशतं सेव्यं स्थानान्तरितानि भाग्यानि ॥२६॥

किञ्चिद् हृष्टोऽथ तद्वाक्यात्, श्रेष्ठ्युवाच तृतीयकम् ।
सोऽप्युवाच पशुपालादिकं कृत्वा यथारुचि ॥२७॥

कृत्वा तद्विक्रयं सम्यग्, गृहीत्वा च ततो धनम् ।
सुखेन तात! तेनाहं, धरिष्यामि धुरं तव ॥२८॥ युग्मम्-यदुक्तम्-

प्रंथमे कृषि-वाणिज्यं, द्वितीये स[ष]ण्डपोषणम्[१] ।
तृतीये राजसेवा च, चतुर्थे पशुपोषणम् ॥२९॥

ततस्तद्वाक्यमाकर्ण्य, किञ्चिद्दूनो धनावहः ।
पप्रच्छ च ततः श्रेष्ठी, तुर्यमाकार्य नन्दनम् ॥३०॥

अथ तुर्योऽवदत् तात !, हत्वैनं नरनायकम् ।
गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं, पुरमन्तःपुरादिकम् ॥३१॥

चतुरङ्गबलं तस्य, लात्वा निजबलेन च ।
विशेषात् तेन राज्येन, धरिष्यामि धुरं तव ॥३२॥ -युग्मम्

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य, स्वकर्णस्याऽपि दुःखदम् ।
पश्यन्नितस्ततः श्रेष्ठी, भीत्याऽपि च रुषाऽपि च ॥३३॥

कम्पमानोऽपि सर्वाङ्गं, मुखे हस्तं न्यसन्नसौ ।
चपेटाभिश्च तं पुत्रं, वारंवारमताडयत् ॥३४॥ युग्मम्-

---

१. षण्ड = राशिः तस्य पोषणं = ब्याज से धन-वर्धन इत्यर्थः सम्भाव्यते ।

ततः प्रोवाच स श्रेष्ठी, रुषारुणित-लोचनः ।
रे निर्लज्ज ! कुलाङ्गार !, कुलहन्ता त्वमेव मे ॥३५॥

किं ब्रवीषि च पापिष्ठ !, वैरी पुत्रच्छलेन च ।
ईदृशेनाऽपि वचसा, ध्रुवं स्यान्मत्कुलक्षयः ॥३६॥

वर्धितः संस्थितश्चाऽत्र, न शुभाय भवेन्मम ।
अत एव त्वदीयास्यमदृष्टमेव सुन्दरम् ॥३७॥ यदुक्तम्-

तेन पुत्रेण किं कार्यमशुभं स्यात् कुलेऽखिले ।
तेन स्वर्णेन किं कार्यं ?, यस्मात् कर्णव्यथा भवेत् ॥३८॥

निर्गच्छ मद्गृहाद्दुष्ट !, वावदूक ! कुभाषक ! ।
त्वया पुत्रेण मद्दोग्धी, पूर्णा स्यादभृता वरम् ॥३९॥

इत्युक्त्वा श्रेष्ठिना तेन, गले धृत्वा त्वपाकृतः ।
पित्राऽपमानितश्चैवं, निर्ययौ स गृहात् ततः ॥४०॥

निर्गच्छंश्चिन्तयामास, निर्दाक्षिण्यमलौकिकम् ।
वाङ्मात्रेणैव तातेन, कीदृशं विहितं खलु ॥४१॥

वाङ्मात्रस्याऽपि नो[मे] दण्डमीदृक् कर्तुं न युज्यते ।
कर्कटीतस्करस्यापि, शिरच्छेदादि नोचितम् ॥४२॥

चपेटादि-प्रदानं तु, तस्य (कर्कटीतस्करस्य) कर्तुं न चापरम्।
तातस्याऽपि तथा कर्तुं, युज्यते नापरं क्वचित् ॥४३॥

तातस्याऽपि न दोषोऽस्ति, दोषोऽयं मत्कृतः खलु ।
येनेदं निष्ठुरं वाक्यं, तत्पुरा जल्पितं मया ॥४४॥ यदुक्तम्-

अप्पत्थावे पढियं अणरसअग्गंमि गाइयं गीयं ।
मा मा भणयं सुरयं तिन्नि वि सोहा न पावंति ॥४५॥

कुलमानहिं चालंतनाऊं माणस खडहडइ ।
नरभाषा जपंत सूअटडओ बंधनि पडइ ॥४६॥

परं भव्यं कृतं तेन, तातेनापि सुबुद्धिना ।
अन्यथा मम भाग्यस्य, परीक्षा लभ्यते कथम् ॥४७॥

स्तोकेनाऽप्यपराधेन, तातेनाऽहं निराकृतः ।
तदत्र नोचितं स्थातुं, मम क्लेशत्रपाकरम् ॥४८॥ यदुक्तम्-

माण पणट्ठइ जइ वि तणु तओ देसडओ चइज्ज ।
मा दुज्जणकरपल्लवहि दंसिज्जंत भमिज्जा ॥४९॥

अतो देशान्तरे वाऽऽशु, गमनं सुन्दरं मम ।
आत्मनः सुकृतस्याऽपि, परीक्षायाः कषोपलम् ॥५०॥ यदुक्तम्-

उत्पद्यन्ते विपद्यन्ते, कोणाऽन्तः कति मत्कुणाः ।
पुमान् स एव योऽन्यत्र, गत्वाऽऽत्मानं प्रकाशयेत् ॥५१॥

यो निर्गत्य न निश्शेषामालोकयति मेदिनीम् ।
अनेकाश्चर्यसम्पूर्णां, स नरः कूपदर्दुरः ॥५२॥

हास्येनापि मया प्रोक्तं, तत् प्रमाणं भवेन्न च ।
तदा स्वमास्यं तातस्य, दर्शयिष्यामि नो कदा ॥५३॥ यतः-

भो राजहंस ! किमिति त्वमिहागतोऽसि ।
योऽसौ बकः स इह हंस इति प्रतीतः ॥५४॥

दिग्गजकूर्मकुलाचलफणिपतिविधृताऽपि चलति वसुधेयम्।
प्रतिपन्नममलमनसां न चलति पुंसां युगान्तेऽपि ॥५५॥

प्रतिपन्नं हि महतां, युगान्ते नो चलत्यहो ।
अगस्तिवचनैर्बद्धो, विन्ध्योऽद्यापि न वर्धते ॥५६॥

इति सञ्चिन्त्य पुण्यात्मा, पुण्यैश्च प्रेरितस्तदा ।
निर्गतो नगरान्नूनं, गुहाया इव केशरी ॥५७॥

स्थितोऽसौ नगरोद्याने, कान्दिशीको विचेतनः ।
इतो ददर्श गच्छन्तं, सार्थेशं नयसुन्दरम् ॥५८॥

प्रणिपत्य ततस्तस्मै, पप्रच्छ विनयादयम् ।
क्व गन्तारोऽधुना यूयमस्माकमिति कथ्यताम् ॥५९॥

सार्थेशोऽपि बभाणैनं, यास्यामः श्रीपुरे वयम् ।
तत्रापि विक्रयं कृत्वा, गमिष्यामो निजं पुरम् ॥६०॥

ततस्तद्वाक्यमाकर्ण्य, हृष्टः श्रेष्ठि-सुतो जगौ ।
ताताऽहमपि गन्ताऽस्मि, तव सार्थे तवाऽऽज्ञया ॥६१॥

दृष्ट्वा स्पष्टाऽऽकृतिस्तेन, स निन्ये सहशर्म्मणा[१] ।
कतिभिर्वासरैर्प्राप, श्रीपुरं नयसुन्दरः ॥६२॥

१. शर्म्मणा सह वर्तते यः सः सहशर्मन् तेन सहशर्मणा-

आपृच्छ्य सोऽपि सार्थेशं, विवेश श्रीपुरं पुरम् ।
असति स्वजने तत्र, बभ्राम सकले पुरे ॥६३॥

न तत्र शुद्धि-मात्रं च, पृच्छति स्माऽखिले पुरे ।
सङ्गीनं विना प्रायो न, कोऽप्याख्याति च जल्पति ॥६४॥

यदुक्तम्-

नक्रः स्वस्थानमासाद्य, गजेन्द्रमपकर्षति ।
स एव प्रच्युतः स्थानात्, शुनाऽपि परिभूयते ॥६५॥

तिणि देसइ इ न जाइं चइ जह अप्पणओ न कोइ ।
सेरी सेरी हिडीयइ वात न पूछइ कोइ ॥६६॥

इतश्च तत्पुरे चाऽस्ति, यथार्थनिपुणः शुभः ।
कलाचार्योऽतिविख्यातः कलासागरचन्द्रमाः ॥६७॥

भ्रमता तेनऽसौ दृष्टः, शिष्यपाठनतत्परः ।
तत्र गत्वा निरीक्ष्यैनं, प्रणमे च तदाऽऽदराद् ॥६८॥

"त्वं माता त्वं पिता बन्धुस्त्वं गुरुस्त्वं च देवता ।
विद्यादानप्रदानाय पण्डिताय नमो नमः" ॥६९॥

इति स्तुत्वा च्छात्रमध्ये, उपविष्टस्तदैव हि ।
कृत्वाऽथ प्राञ्जलिं सोऽथ, विनयेन नतक्रमः ॥७०॥

अपूर्वश्छात्रवर्गेऽस्मिन्, कुत आगाद् भवानिह ।
इत्युक्तं पण्डितं नत्वा, विनयादित्यभाषत ॥७१॥

तात-तुल्य ! तवोपान्ते, विद्यामादातुमागतः ।
प्रसीद यच्छ विद्यां मे, विद्वज्जन-शिरोमणे! ॥७२॥ यदुक्तम्-

"विद्वत्त्वं च नृपत्वं च, नैव तुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते[1] ॥७३॥"

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य, कलाचार्यकृपानिधिः ।
तद्वाक्यं प्रतिपद्याथ, बभाषे तमिति स्वयम् ॥७४॥

वत्स ! त्वदीयः कोऽप्यत्र, सङ्गीनो वर्तते यतः ।
भोजनादिषु यश्चिन्तां, करोति नित्यमादराद् ॥७५॥

भोजनादि विना वत्स!, पाठो[कालो] नो निर्वहत्यहो !! ।
भोजनं सर्वकार्याणा-माद्यं साधनमुच्यते ॥७६॥ यदुक्तम्-

आचार्यपुस्तकनिवाससहायवल्ला[2],
बाह्यानि पञ्च पठनं परिवर्धयन्ति ।
आरोग्य-बुद्धि-विनयोद्यम-शास्त्ररागाः,
पञ्चान्तराः पठनसिद्धिगुणा भवन्ति ॥७७॥[3]

गीतं नृत्यं कलाभ्यास-स्तावद्विज्ञानमेव हि ।
क्षुधानिशाचरी यावत्, प्रत्यासत्तिमियर्ति न ॥७८॥

आदौ रूपविनाशिनी कृशकरी कामस्य विध्वंसिनी ।
ज्ञानं मन्दकरी तपः क्षयकरी धर्मस्य निर्मूलनी

१. गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते । २. वल्ल=देशीमालायां 'अन्न-विशेषः' अनेन भोजन-मात्रं ग्राह्यं उपलक्षणात् । ३. सूक्त-मुक्तावली ४६/१६

पुत्रभ्रातृकलत्रभेदनकरी लज्जाकुलच्छेदिनी ।
सा मां पीडति सर्वदोषजननी प्राणापहारी क्षुधा ॥७९॥

ततस्तद्वचनं श्रुत्वा, प्रत्यूचे धनसागरः ।
सङ्गीनः कोऽपि नास्त्यत्र, सङ्गीनस्तु त्वमेव हि ॥८०॥

ततस्तं पण्डितः सोऽप्यपाठयद् हितचेतसा ।
अमात्यतनयस्तस्य, भोजनाऽऽच्छादने ददौ ॥८१॥ यदुक्तम्-

जनिता चोपनेता च, यस्तु विद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता, पञ्चैतेऽपि नरः स्मृताः ॥८२॥

गुरोरेव प्रसादेन, लभ्यते ज्ञानलोचनम् ।
समस्तं दृश्यते येन, हस्तरेखेव केवलम् ॥८३॥

एवं च पठतस्तस्य, ज्ञानावरणकर्म तत् ।
समागतं तदैवाशु, यद् बद्धं पूर्वजन्मनि ॥८४॥

तत्प्रभावाच्च किं जातं, श्रेष्ठिपुत्रस्य तस्य हि ।
पठतोऽथाऽभियोगेन, नागच्छत्यक्षरोऽपि हि ॥८५॥

हसन्ति पाठ-समये, तच्छिष्या हीलयन्ति च ।
मूर्खचट्टाऽभिधानं च, वदन्ति तं मुहुर्मुहुः ॥८६॥

इत्युक्तं दूयमानं तं, दृष्ट्वा प्रोवाच पण्डितः ।
वत्स ! पूर्वभवे कर्म, ज्ञानावरणमर्जितम् ॥८७॥ यदुक्तम्-

यदर्जितं सुखं दुःखं, नियतेः कर्मभिः पुरा ।
तदवश्यमुदेत्येव, मुधा रे जीव ! मा शुचः ॥८८॥

तत्प्रभावादक्षरोऽपि, नाऽऽगच्छति तवाऽधुना ।
तेनोपहासस्थानं त्वं, सञ्जातो लेखशालिनाम् ॥८९॥

खेदं मा कुरु वत्स ! त्वं, कर्म्मविध्वंसहेतवे ।
विनयं कुरु विद्यायै, नित्यं छात्रेषु भक्तितः ॥९०॥ यदुक्तम्-

विनयेन विद्या ग्राह्या, पुष्कलेन धनेन वा ।
अथवा विद्यया विद्या, चतुर्थो नैव विद्यते ॥९१॥[1]

पट्टिका-पट्टकादीनां, मार्जनत्वे जने तथा ।
कुरुष्व पट्टिकापात्रे, जलक्षेपार्प्पणादिकम् ॥९२॥

सरस्वती-देवताया-स्त्रिसन्ध्यमर्च्चनादिकम् ।
कुरु त्वमेकचित्तेन, शुचिर्भूत्वा निरन्तरम् ॥९३॥

अमुं सारस्वतं मन्त्रं, पठ तस्याः पुरोऽन्वहम् ।
येन त्वदीयं कर्मेदं, विलयं याति सत्वरम् ॥९४॥

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य, हृष्टोऽथ धनसागरः ।
तत्सर्वमनुमेने च, कर्म्मध्वंसनहेतवे ॥९५॥

शारदायाः कलाचार्य-शिष्याणां च तथाविधि ।
विनयं विदधाति स्म, हितज्ञो धनसागरः ॥९६॥

विनयाद् विनयचट्टं, प्राप नाम तृतीयकम् ।
अनेन विधिना तस्य, बहवो वासरा ययुः ॥९७॥

इतश्च तस्मिन्नगरे, राजा श्रीसुरसुन्दरः ।
कमला कमलेवास्य, पट्टदेवी मनोहरा ॥९८॥

१. सूक्त-मुक्तावली ४६/१४

सौभाग्यसुन्दरी पुत्री, जीवितादपि वल्लभा ।
चतुःपुत्रोपरि वरा, कमनीयगुणालया ॥९९॥

यस्याः रूपप्रकर्षेण, निर्जिताश्च सुराङ्गनाः ।
लज्जितास्त्रिदिवं जग्मुस्तद्रूपाऽऽलोकनाक्षमाः ॥१००॥

सौभाग्येनाऽतिरम्येण, दमयन्तीव सुन्दरा ।
चतुःषष्टिकलोपेता, मूर्त्तिमतीव भारती ॥१०१॥

कलाचार्यस्य सन्निधौ, पठति साऽथ सर्व्वदा ।
सा कला तच्च विज्ञानं, तन्नास्ति यन्न वेत्ति सा ॥१०२॥ चतुष्कलापकम्

पठन्तं तत्र सा लक्ष्मी-निवासं मन्त्रिनन्दनम् ।
आत्माऽनुरूपं संभाव्य, साऽनुरक्ता[१] बभूव च ॥१०३॥

प्रत्यहं मधुराऽऽलापै-स्तमुद्दिश्य प्रजल्पति ।
तद्दत्तं लाति तस्याऽपि, ददाति सुखभक्षिकाम् ॥१०४॥

तत्सम्मुखं च सा स्निग्धां, दृष्टिं यच्छति नित्यशः ।
तं दृष्ट्वा चातिरागेण, पाठे मन्दा भवत्यहो ! ॥१०५॥

विकारान् सात्त्विकान्नित्यं, सा करोत्यनुरागतः ।
अन्यदाऽवसरं प्राप्य, लिलेखेदं तदग्रतः ॥१०६॥

लक्ष्मीनिवाससत्याख्यो, भव पत्नीमवाप्य माम् ।
नृजन्मतरु-साफल्यं, विधेहि सदृगाऽऽवयोः ॥१०७॥

१. अनुरक्तेन सह वर्तते या सा ।

ततोऽऽसौ वाचयित्वेदं, प्रत्याह नृपकन्यकाम् ।
कोऽयं मनोरथो भद्रे !, नीचस्ते प्रतिभाति मे ॥१०८॥

किं वाऽथ कल्पलतिका, करीरमधिरोहति ।
रतिं पद्मलता भद्रे !, लभते किं मरुस्थले ॥१०९॥

सिंहिका जम्बुकं दृष्ट्वा, पतिं कर्तुं समीहते ।
हस्तिनी शूकरं दृष्ट्वा, न क्वापि पतिमीहते ॥११०॥

यथाऽऽम्रलतिका काकसंगतिं नेहते कदा ।
न शोभते राजहंसी, कुर्व्वन्ती बकसङ्गतिम् ॥१११॥

यथा कस्तूरिकाक्षेपः, पलाण्डे नैव शोभते ।
क्षीरोद-लहरी नैव, शोभते च मरुस्थले ॥११२॥

यथा चापौरिरीयोगः(?), शोभामाप्नोति कर्हिचित् ? ।
तथा त्वदीय-सम्बन्धः, सेवके नैव युज्यते ।११३। पञ्चभिःकुलकम्

ततस्तद्वाक्यतो दूना, पुनः प्रोवाच नृपात्मजा ।
किमेवं युज्यते वक्तुं, वाक्यं त्वत्सदृशां सताम् ॥११४॥

यथा मणेः सुवर्णस्य, नासिकायाः मुखस्य च ।
कमलिन्या मरालस्य, विद्युताया घनस्य च ॥११५॥

निशानाथस्य रोहिण्या, लक्ष्म्या लक्ष्मीपतेरिव ।
सम्बन्धः शोभते लोके, सुकृतैरावयोरपि ॥११६॥ युग्मम्

त्वामेव सर्वथा नाथं, करिष्यामीति निश्चयः ।
अन्यथा मृत्युमेवैकं, ज्ञात्वैवमुचितं कुरु ॥११७॥

क्षणं विमृश्य मन्त्रज्ञः प्रत्यूचे मन्त्रिनन्दनः ।
कालक्षेपे कृते तत्र, तदा मेने तदीप्सितम् ॥११८॥ यदुक्तम्-

क्षणेन लभ्यते यामो, यामेन लभ्यते दिनम् ।
दिनेन लभ्यते कालः, कालः कालो भविष्यति ॥११९॥

सफलं सेचयेद् वस्तु, स्वहितं चैव कारयेत् ।
निरास्वादानि कार्याणि, दूरतः परिवर्जयेत् ॥१२०॥

ततस्तद्वाक्यमाकर्ण्य, हृष्टा सा नृपनन्दिनी ।
पुनरप्याह गन्तव्यमावाभ्यामन्यमण्डले ॥१२१॥

अष्टमी-दिवसे साय-मागन्तव्यं त्वयाऽनघ ! ।
अहं तत्राऽऽगमिष्यामि, सखीयुक्ता स्मराऽऽलये ॥१२२॥

कृत्वा विवाहं तत्राऽपि, मनश्चिन्तितसिद्धये ।
तौ मिथौ मन्त्रयित्वेदं, जग्मतुः स्व-स्वमन्दिरम् ॥१२३॥

त्रिभिर्विशेषकम् ॥

मन्त्रिपुत्रस्तदा दध्यौ, धिग् धिग् वामभ्रुवः पुनः ।
स्वयं पतन्त्यकार्येऽपि, पातयन्त्यपरानपि ॥१२४॥

नारीणां स्नेहपाशेन, ये बद्धा विबुधा अपि ।
बलिवर्दा इवाऽत्यन्तं, प्राप्नुवन्ति कदर्थनाम् ॥१२५॥

इहलोकेऽपि दुःखाय, परलोके ततोऽधिकम् ।
अतो नारिषु ये रक्ता; मूढात्मानः कथं न ते ? ॥१२६॥

मुखे मधुरिमा तस्या, हृदि हालाहलं पुनः ।
इयं निर्मापिता धात्रा, विषकुम्भ-पयोमुखी ॥१२७॥ यदुक्तम्-

नाऽमृतं न विषं किञ्चि-देकां मुक्त्वा नितम्बिनीम् ।
सैवाऽमृतमयी रक्ता, विरक्ता विषवल्लरी ॥१२८॥[1]

इयं रक्ता विरक्ता वा, मय्येव ज्ञायते नहि ।
क्षणेनाऽपि हि रक्ता, स्याद्विरक्ताऽपि क्षणेन हि ॥१२९॥

पितरं मातरं वाऽपि, भ्रातरं स्नेहविह्वलम् ।
क्षणेनोज्झति वामाक्षी, निजकार्यविधित्सया ॥१३०॥

इयं मयि स्नेहवती, बाह्याऽऽकारेण दृश्यते ।
न पुनः परमार्थेन, यतोऽनर्थविधायिनी ॥१३१॥

राजा विज्ञातवृत्तोऽपि, कुटुम्बं मे हनिष्यति ।
अतोऽनर्थ-विधायिन्या, सृतं मे चाऽनया ध्रुवम् ॥१३२॥

किञ्च मे जनकस्याऽहमेकोऽस्मि तनयो वरः ।
मत्कुलं च ममाऽऽयत्तं, सस्नेहौ पितरौ मयि ॥१३३॥

यत एव कुलस्यास्य, जनन्या जनकस्य च ।
मद्वियोगेन च एतेषां, मृत्युरेव भविष्यति ॥१३४॥

अत एव कथं चैषां, दुःखदायी भवाम्यहम् ।
अस्याः कृते कथं चाऽहं, शोकाब्धौ क्षिपयामि तान् ॥१३५॥

पितरौ दुःखप्रतीकारावुपकारैः शतैरपि ।
जिनानामभिमान्यौ तौ, सिद्धान्ते गदितं जिनैः ॥१३६॥

१. यस्या सङ्गेन जीव्येत म्रियेत च वियोगतः । २६३/१० सु. र. भाण्डागारं ।

अत एव हि तौ मान्यौ, नैवोपेक्ष्यौ कदापि हि ।
तत्सेवा च कृता नित्यं, परत्रेह च शर्मणे ॥१३७॥

तातपादाम्बुजच्छायां, न त्यजाम्यङ्गनाकृते ।
सुलभोऽप्यङ्गनायोगः, पूज्ययोगस्तु दुर्लभः ॥१३८॥

अपकीर्तिः कुलध्वंसो, वियोगः स्वजनैः सह ।
अत्राऽपरत्र नरकाऽवाप्तिस्तस्या इदं फलम् ॥१३९॥

ततोऽपि विपरीतं तु, पूज्ययोगेन चाऽप्यते ।
तत्सेवैव हि कर्तव्या, विबुधैः सुखहेतवे ॥१४०॥

परं केनाऽप्युपायेनोत्तारयामि स्वकण्ठतः ।
एनां व्याधिमिवाऽन्यस्य, गले संपातयाम्यहम् ॥१४१॥

तादृशः कोऽपि नास्त्येव, यस्यैषा पात्यते गले ।
सुदृढं हि कृतं कार्यं, स्वस्याऽन्यस्य सुखावहम् ॥१४२॥

इति चिन्तापरस्याऽस्य, तस्य पुण्याऽनुभावतः ।
तदैव सहसा श्रेष्ठि-नन्दनः स्मृतिमागतः ॥१४३॥

असावेव हि योग्योऽस्ति, तत्पाणिग्रहहेतवे ।
वैदेशिकोऽपि रूपस्वी, मदाऽऽयत्तोऽपि भोजनाद् ॥१४४॥

वयसा मत्समश्चाऽस्ति, मत्तो रूपेण चाऽधिकः ।
सौभाग्यादिगुणैः रम्यः, किं जातं पाठवर्जितः ? ॥१४५॥

सुरूपः सुकुलीनोऽपि, जने ख्यात्याऽऽस्पदं भवेद् ।
अर्धभाग्यं यतो रूपं, कथ्यते शास्त्रकोविदैः ॥१४६॥

यत्राऽऽकृतिस्तत्र गुणा, गुणास्तत्र धनं भवेद् ।
धनेन सर्वकामाऽऽप्तिः, कामाप्तिः सुखसाधनम् ॥१४७॥

जातिर्विद्या च सौहार्दं, त्रीण्येतान्यपतद् गिरौ ।
एकमेव धनं श्लाघ्यं, यस्मात्त्रीण्यपि जायते ॥१४८॥

अतोऽमुष्मिन् गले लग्ना, भविष्यति सुखाऽऽस्पदम् ।
ममाऽपि च सुखं रम्यं, न च विश्वासघातकम्[१] ॥१४९॥ यदुक्तम्-

"मित्रद्रोही कृतघ्नश्च, स्तेयी विश्वासघातकः ।
चत्वारो नरकं यान्ति, यावच्चन्द्रदिवाकरौ" ॥१५०॥

इत्थमेव करिष्यामि, स्वस्याऽन्यस्य सुखाय वै ।
साहाय्येन मदीयेन, सुखभागी भवत्वसौ ॥१५१॥

कप्पा सहसारिच्छडा विरला सज्जण हुंति ।
नियदेहहकड्ढे वि गुणपरगुब्भह ढंपंति ॥१५२॥

इति सञ्चिन्त्य शुद्धाऽऽत्मा, कृत्वा मनसि निर्णयम् ।
तस्थौ गेहे स्वकार्याणि, कुर्व्वन् गम्भीरतान्वितः ॥१५३॥

मन्त्रिपुत्रो दीर्घदर्शी, स्वपक्षक्षेममहेतवे ।
तस्मै विनयचट्टाय, रहसीदमचीकथत् ॥१५४॥

त्वमेव परमं मित्रं, त्वम्मे भ्राताऽऽसि निश्चितम् ।
त्वत्तः परोऽपि नास्त्येव, सङ्गीनो विश्वमण्डले ॥१५५॥

१. क स्वार्थे ।

एकमस्तीह नः कार्यं, करोषि यदि बान्धव ! ।
तदा प्रकाशयाम्यद्य, मनश्चिन्तित-सिद्धये ॥१५५॥

परं कस्याऽपि नो वाच्यं, गुह्यमेतन्मयोदितम् ।
यतः परममित्राणां, शास्त्रे लक्षणमुच्यते ॥१५७॥

ददाति प्रतिगृह्णाति, गुह्यमाख्याति पृच्छति ।
भुङ्क्ते भोजयते चैवं, षड्विधं प्रीति-लक्षणम् ॥१५८॥

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य, साहसैकशिरोमणिः ।
विनयाच्चाऽभ्यधादित्थं, मित्र ! मां तन्निवेदय ॥१५९॥

मन्त्रिपुत्रो जगादैवं, विलोक्येतस्ततोऽपि च ।
मित्राहं कथयाम्युच्चै-स्त्वमेव मम जीवितम् ॥१६०॥

कला-विद्याविहीनोऽपि, भव भाग्यैकभाजनम् ।
मत्स्थाने नृपतेः पुत्रीं, विवाह्याऽलक्षितो व्रज ॥१६१॥

प्रतिपद्य वचस्तस्य, चिन्तयामास श्रेष्ठिसूः ।
क्वाऽहं ? क्व राजपुत्रीयं ?, बुध्यते न विधेर्गतिः ॥१६२॥

हा ! किं करोमि मूर्खोऽस्मि, सा तु मूर्ता सरस्वती ।
योगोऽयं घटितः कीदृग्, कोऽप्युपायोऽस्ति सम्प्रति? ।१६३।

किं करोमि ? क्व गच्छामि ?, प्रतिज्ञेयं तु दुस्तरी ।
यदि क्वाऽपि प्रगच्छामि, तां मुक्त्वा चापि बान्धवम् ॥१६४॥

तदा प्रतिज्ञाभङ्गः स्यान्मित्रद्रोहणमेव च ।
एतद् द्वयं कथं लात्वा, व्रजामि ननु साम्प्रतम् ॥१६५॥ युग्मम्-

प्रतिज्ञा क्रियते नैव, क्रियते हि च पाल्यते ।
अपाल्यस्य प्रतिज्ञस्य, जीवितान्मरणं वरम् ॥१६६॥

तस्याऽग्रे च तथैवोक्त्वा, गमनं नैव सुन्दरम् ।
स्थित्वा तत्कार्यमासूत्र्य, यद् भाव्यं तद् भवत्वदः ॥१६७॥

इति सञ्चिन्त्य तेनैव, पण्डितस्य कलागुरोः ।
शारदासद्मनः सायं, कुञ्चिका जगृहे ततः ॥१६८॥

द्वारमुद्घाट्य मध्येऽगाद्, भारतीं भक्तितो नमन् ।
मन्त्रं स्मृत्वा पूजयित्वा, पश्चादित्यवदच्च सः ॥१६९॥

मया षाण्मासिकी सेवा, कृता देवि ! त्वदग्रतः ।
यत्किञ्चिदपि न प्राप्तं, तद्दोषः कर्म्मणां मम ॥१७०॥ यदुक्तम्-

"सायर तुज्झ न दोसो दोसो अह्माण चेव कम्माणं ।
रयणायरंमि भारिए सालूरो करे मे लग्गो ॥१७१॥[1].

समीहितं यन्न लभामहे वयं प्रभो! न दोषस्तव कर्मणां मम।
दिवाऽप्यूलूको यदि नावलोकते तदाऽपराधः कथमंशुमालिनः ॥१७२॥

"पत्ते वसन्तमासे रिद्धिं पावंति सयलवणराई ।
जं न करीरे पत्तं तं किं दोसो वसंतस्स ? ॥१७३॥[2]

प्रतिपन्नं महत्कार्यं, मन्त्रिनन्दनसन्निधौ ।
कृते कार्ये च मरणं, राजपुत्र्याः भविष्यति ॥१७४॥

१. सूक्तमुक्तावली २०/५ । २. सूक्तमुक्तावली १९/१५ ।

अकृते च ममाऽवश्यं, मरणं शरणं भवेत् ।
स्त्रीविघातं मन्निमित्तं, दृष्ट्वा मे तद् भविष्यति ॥१७५॥

ममाप्युभयथा तच्च, ततो युक्तं त्वदग्रतः ।
पुरः स्थित्वा शिरच्छेत्तु-मारेभेऽधिकसाहसः ॥१७६॥[1]

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो,
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ ।
व्याधिर्भेषजसङ्ग्रहेण विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषम्,
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ॥१७७॥

हस्ते धृत्वा ततो देवी, प्रत्यक्षीभूय साऽवदत् ।
तुष्टाऽस्मि तव सत्त्वेन, साहसैकशिरोमणे ! ॥१७८॥

वरं याचस्व याचस्व, किं ते वत्स ! ददाम्यहम् ।
सोऽवदच्छ्रेष्ठिसूः हृष्टो, यदि तुष्टाऽसि देवि ! मे ॥१७९॥

नैपुण्यं सर्व्वशास्त्रेषु, तथा सर्वकलास्वपि ।
स्वप्रतिज्ञाम्बुधेः पारं, देह्यमोघं वचस्तदा ॥१८०॥ युग्मम्-

एतत् सर्व्वमविघ्नेन, भविष्यति तवाऽनघ ! ।
परं मार्गे न वक्तव्य-मित्युक्त्वा सा तिरोदधे ॥१८१॥ यदुक्तम्-

"साहसीयां व्यवसाइयां धीरा एकमनाह ।
देव पडिउंच्छइ चिंतणइ अरडइ फलिस्यइ तां ह ॥१८२॥

---

१. १७६-१७८ अकृते कार्ये मम मरणं भविष्यति प्रतिज्ञाभङ्गात् । कृते कार्ये राजपुत्रीमरणं भविष्यति, तस्या मरणं दृष्ट्वा ममापि मरणं स्त्रीविघातत्वात् । इति कृते कार्ये वा न कृते वा उभयथापि मरणं, अतो हे देवि! तवाग्रे एव तन्मरणं योग्यम् ।

प्रणम्य शारदादेवीं, प्राप्तविद्यो विनिर्ययौ ।
द्वारं तथैव दत्त्वाऽऽशु, तावदऽऽगात् स पण्डितः ॥१८३॥

प्रणम्य पण्डितं प्राह, ममाऽऽगः क्षम्यतामथ ।
चिरादुत्कण्ठितः पित्रोर्यामि तात ! त्वदाऽऽज्ञया ॥१८४॥

तदेति पण्डितो दध्यौ, तं जानन् मूर्खशेखरम् ।
अमुं विना न कोऽप्यासीन्मूर्खच्छात्रः पुरा मम ॥१८५॥

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किम्,
नोलूकोऽपि विलोकते, यदि दिवा किं दूषणम् सूर्यस्य किम् ।
वर्षा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणम्,
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ।१८६। तथापि-

दिव्यशक्ति-महामन्त्र-सिद्धसारस्वतेन सः ।
अभिमन्त्र्य जलं चैनं, पाययामास पण्डितः ॥१८७॥

अनेन सिद्धवचनो, भूयास्त्वं श्रेष्ठिनन्दन! ।
कल्याणं विजयं भद्रं, चिन्तितार्थसमागमः ॥१८८॥

मद्वाक्यतस्तवैवाऽऽशु, भूयान्मार्गेऽप्यविघ्नता ।
वत्स ! त्वदीयं दुरितं, क्षाराब्धौ न्यपतद् द्रुतम् ॥१८९॥

एकमप्यक्षरं यस्तु, गुरुः शिष्यं निवेदयेत् ।
पृथिव्यां नास्ति तद् द्रव्यं, यद् दत्त्वा चानृणी भवेत् ॥१९०॥

इत्याऽऽशिषं गुरोर्लात्वा, नत्वा तं च चचाल सः ।
प्रेरितः शकुनैर्मन्त्रिपुत्रं चाशु समागतः ॥१९१॥

तेनाऽपि तत्क्षणात् तस्मै, स्वाऽश्वो वेषः समर्प्पितः ।
शृङ्गारं मन्त्रिपुत्रस्य, कृत्वा कामालयं ययौ ॥१९२॥

इतः सा राजकन्याऽपि, समं सख्या तदा क्षणे ।
नेपथ्यमश्व-युग्मं च, साराण्याभरणानि वै ॥१९३॥

राज्ञः सर्वस्वमादाय, निर्ययौ वासवेश्मतः ।
द्रुतं कामालयं प्राप्य, हृष्टा दृष्ट्वा तुरङ्गमम् ॥१९४॥ युग्मम्-

तुरङ्गमेन चाऽज्ञायि, नूनमेष मम प्रियः ।
निर्विलम्बं विवाह्यैनं, कृतकृत्या भवाम्यहम् ॥१९५॥

ततो विवाह्य संपूर्ण-कामा कामालयाद् द्रुतम् ।
पूर्वाशाऽभिमुखं चेलुरश्वानाऽऽरुह्य ते त्रयः ॥१९६॥

भाषितः स तया मार्गे, श्लोककाव्यादिभिर्नवैः ।
नाऽदात् प्रतिवचः किञ्चिन्, मूढतामाश्रयन्निव ॥१९७॥

सोऽपि श्रीशारदावाक्यं, स्मृत्वा मौनमशिश्रियत् ।
जानन्नपि च काव्यार्थं, तस्थावज्ञानवत्तदा ॥१९८॥

कुटुम्बविरहोद्विग्नं, मेने सा च मनस्विनी ।
साम्प्रतं यदि न ब्रूते, वदिष्यति घनं प्रगे ॥१९९॥

मातुर्दुःखं पितुर्दुःखं, दुःखमस्य गृहस्य च ।
तेन दुःखेन मे कान्तो, नालापयति मामसौ ॥२००॥

असावेव हि धन्योऽस्ति, दाक्षिण्यैक-शिरोमणिः ।
मत्कृते येन कृतिना, सर्व्वमेतदपाकृतम् ॥२०१॥

सखी व्यचिन्तयच्चित्ते, कथमेष न जल्पति ।
महोत्साहेन सञ्जातं, पाणिग्रहणकर्म्म तत् ॥२०२॥

ज्ञातं पितृवियोगादि, भाषणाऽभावकारणम् ।
कथं च खिद्यते कन्या, स्वयमेव वदिष्यति ॥२०३॥

इति चिन्ताजुषां तेषां, प्रचुरोल्लङ्घिताऽध्वनाम् ।
तुरङ्गमाऽधिरूढानां, वायुवेगेन गच्छताम् ॥२०४॥

गता विभावरी चारुरोह द्रष्टुमिवाऽर्यमा ।
तेषां च कौतुकं तुङ्गामुदयाचल-चूलिकाम् ॥२०५॥ युग्मम्-

अथ प्रातरितो मूर्ख-चट्टं नाऽमात्यनन्दनम् ।
दृष्ट्वा वज्राऽऽहतेवाशु, सञ्जाता नृपनन्दिनी ॥२०६॥

मूर्छामतुच्छां सम्प्राप्य, पीडिता शोकशङ्कुना ।
दवदग्धमृगीवाशु, न्यपतद् भुवि तत्क्षणाद् ॥२०७॥

जलभ्रष्टा शफरीव, सा लुलोठ महीतले ।
वाताऽऽहतमृणालीव, बभूव च विसंस्थुला ॥२०८॥

सख्या प्रेरितवातेन, लब्धसंज्ञा व्यचिन्तयद् ।
अन्यथा चिन्तितं कार्यं, दैवेन कृतमन्यथा ॥२०९॥ यदुक्तम्-

"अघटितघटितानि घटयति सुघटितघटितानि जर्जरीकुरुते ।
विधिरेव तानि घटयति यानि पुमान्नैव चिन्तयति ॥२१०॥[१]

१. सूक्त मुक्तावली १८/१९

अहो नीरं न तीरं मे, जातं कर्मवशान्मम ।
हस्तौ च केवलं दग्धौ, पृथुका भक्षिता न च ॥२११॥

दोषो न विद्यते वाऽस्य, दोषोऽयं कर्मणो मम ।
फलमेवंविधं चाऽस्य, कर्मणो युक्तमेव तत् ॥२१२॥

मत्कृतं हि मयैवाऽशु, भुज्यते तर्हि सुन्दरम् ।
अतः क्वाऽपि स्थितिं कृत्वा, पूर्यते जन्म केवलम् ॥२१३॥

कतिभिर्वासरैर्जग्मुरथाघाटपुरं पुरम् ।
आवासमेकमादाय, तस्थुर्दुस्थाशया इह ॥२१४॥

गृहस्योपरिभूम्यां सा, गमयत्येव वासरान् ।
तं मूर्खमेव मन्वाना, दृशाऽपि तु न पश्यति ॥२१५॥

इतश्च श्रेष्ठिपुत्रोऽसौ, सरस्वत्याः प्रसादतः ।
कलायां कुशलोऽत्यन्तं, सर्व्वविद्याब्धिपारगः ॥२१६॥

तत्स्थानवासिनो लोका-स्तद्विद्यागुणरञ्जिताः ।
वदन्ति च मिथश्चैवमसौ विद्याब्धिपारगः ॥२१७॥ यदुक्तम्-

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते, पितृवंशो निरर्थकः ।
वासुदेवं नमस्यन्ति, वसुदेवं न ते जनाः ॥२१८॥

सा कला तच्च विज्ञानं, तन्नास्ति यन्न वेत्त्वसौ ।
विद्याविलास इति च, नाम दत्तं यथातथम् ॥२१९॥

असौ विद्याविलासोऽपि, कलाकौशलवांस्तथा ।
यत्र यत्रास्ते गोष्ठिकायां, तत्र तत्रैक एव सः ॥२२०॥

अथ तत्पुरभूपालो, जयसिंहोऽस्ति विश्रुतः ।
सरः कारयतः तस्य, ताम्रपत्रं विनिर्गतम् ॥२२१॥

तत्र या लिपिरुत्कीर्णा, सा केनाऽपि न वाच्यते ।
दापितः पटहो राज्ञा, तदा तद्वाचनेच्छया ॥२२२॥

यः कोऽपि वाचयत्येनं, धुर्यो मम स मन्त्रिषु ।
विद्याविलासः श्रुत्वैवं, वाचयामास हेलया ॥२२३॥

कोट्यस्तिस्त्रः सुवर्णस्य, सन्ति प्राच्यां निधीकृताः ।
अतः स्थानात्करैरेका-दशभिर्भीमभूभुजा ॥२२४॥

राजा तत्रैव ताः प्राप्य, तस्मै मन्त्रिपदं ददौ ।
स्वामिन्यै तस्य तद्वृत्तं, सख्याऽख्यायि यथातथम् ॥२२५॥

विद्वत्तया च कीर्त्या च, माननीयो मनीषिणाम् ।
ततस्तवाप्यवज्ञातुं, [1]साम्प्रतं न हि साम्प्रतम् ॥२२६॥

मानो न क्रियते भद्रे !, मानेन लघुता भवेद् ।
इहाऽपरत्र दुःखाय, मानः प्रोक्तो मनीषिभिः ॥२२७॥

यथा बाहुबलेर्नूनं, साऽभिमानश्च संयमः ।
क्लेशाय समभूल्लोके, तद्विरक्तः श्रेयसेऽभवद् ॥२२८॥

यथा भरतपुत्रस्य, मरीचेः समभूत्तदा ।
कुलाऽभिमानो दुःखाय, संसारस्य च कारणम् ॥२२९॥ यदुक्तम्-

१. अधुना नहि योग्यम् ।

दुब्भासिएण इक्केण मरीई दुक्खसायरं पत्तो ।
भमिओ कोडाकोडिं सागरसरिनामधेज्जाणं ॥२३०॥

अहो ! मे उत्तमो वंशो, अहो ! मे उत्तमं कुलम् ।
इति जातिमदं कुर्वन्, पतितोऽसौ भवाम्बुधौ ॥२३१॥

यथा षष्टिसहस्त्रास्ते, पुत्राः सगरचक्रिणः ।
बलाऽभिमानतः प्रापु-र्भस्मीभावं च तत्क्षणाद् ॥२३२॥

रूपाऽभिमानतः सीता, निवासो राक्षसाऽऽलये ।
अहङ्कारवशात् प्राप, नरकं दशकन्धरः ॥२३३॥

अच्चङ्कारी यथा गर्वान्महन्तीं च कदर्थनाम् ।
तद्विरक्ता च सम्प्राप, सुरराजप्रशंसताम् ॥२३४॥

नर्म्मदासुन्दरी प्राप, निजसौभाग्यगर्व्वतः ।
स्थानभ्रंशं मुनेः शापं, घोरां चैव कदर्थनाम् ॥२३५॥

परपरिवादादात्मोत्कर्षाच्च बध्यते कर्म ।
नीचैर्गोत्रं प्रतिभवमनेकभवकोटिदुर्मोचम् ॥२३६॥

अत एव न कर्तव्यो, मानः स्वामिनि ! सम्प्रति ।
विशेषतो गुणाऽऽधिक्ये, क्रियमाणोऽतिदुःखदः ॥२३७॥

अथवाऽपि न कर्त्तव्यो, मानो हीनगुणे पतौ ।
किं पुनः सद्गुणाऽऽधारे, कुलस्त्रीणां च नोचितः ॥२३८॥

माणिणि तित्तउ मान करि जित्तउ कंत सुहाइ ।
रयणजडीजउ पाणही तउ पहिरेवी पाइ ॥२३९॥

जइ माणं कीस पिउ अहव पिउ कीस कारए माणं ।
माणिणि इक्कइ खंभे दुन्निगइं दानवज्झंति ॥२४०॥

दिनद्वयं त्रयं यावन्मासं यावच्च शोभते ।
अत्यन्तं विहितो मानो, न सुखाय गुणाय च ॥२४१॥ यतः-

"अतिरूपेण हृता सीता, अत्यहङ्काराच्च रावणः [हतः]।
अतिदानाद् बलिर्बद्ध, अति सर्व्वत्र वर्जयेद् ॥२४२॥"[1]

विनयो विहितो भद्रे !, गौरवाय गुणाय च ।
यशसे दोषशान्त्यै च, परत्रेह च शर्म्मणे ॥२४३॥

विनयाच्छ्रियमाप्नोति, कीर्तिं च लभते जनः ।
स्वकार्यस्य च संसिद्धिं, करोति तत्क्षणादपि ॥२४४॥

राजानोऽपि प्रसीदन्ति, महान्तः साऽनुकूलताम् ।
देवाश्च किङ्करीभावं, कुर्व्वन्ति विनयादपि ॥२४५॥

भूत-प्रेत-पिशाचाद्याः, शाकिन्यो दुष्टबुद्धयः ।
व्यालव्याघ्रादयः सर्व्वे, शान्ताः स्युर्विनयादपि ॥२४६॥

अभिमाननगाद् देवि ! विधेह्युत्तरणं द्रुतम् ।
यतः कामार्थसम्पत्तिर्भविष्यति तवानघे ! ॥२४७॥

स्वकीयपतिना सार्धं, भुङ्क्ष्व भोगान् यथेच्छया ।
मानुष्यतरु-साफल्यं, विधेहि त्वमशङ्किता ॥२४८॥

१. अतिदानाद् बलिर्बद्धो ह्यति दयति सुयोधनः । विनष्टो रावणो लोभादति सर्वत्र वर्जयेत् ॥ सुभाषित संग्रह ११२३.

असावपि च भव्योऽस्ति, सुरूपः सुभगाग्रणीः ।
अनुरागी त्वत्समश्च, वयसा च गुणैरपि ॥२४९॥

किं कार्यं मन्त्रिपुत्रेण, च्छलं कृत्वा च यः स्थितः ।
असावेव हि साधीयान्, यो दत्तो विधिना स्वयम् ॥२५०॥

इत्यादियुक्तिभिः सख्या, बोधिताऽपि न बुध्यते ।
चिक्कणे च घटे नीरं, नान्तः प्रविशति स्म यद् ॥२५१॥

सा प्राह वेद्मि विद्वत्त्वं, तस्याहं किमुच्यते ।
मद्धनं विलसत्येष, विश्रुतोऽभूच्च सर्व्वतः ॥२५२॥ यतः-

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छता-
च्छैलं शैलतटात् पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना ।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥२५३॥

यस्याऽस्ति वित्तं स नरः कुलीनः,
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ॥२५४॥

अकुलीनोऽप्यविद्योऽपि, धनाढ्यै धनदायते ।
अत एव धनं लोके, श्लाघ्यतां लभतेतराम् ॥२५५॥

मानो न क्रियते सत्यं, मानाच्च लघुता भवेत् ।
परं मानविहीनोऽपि, जनः पूजां च नावहेद् ॥२५६॥

जनो मानविहीनोऽपि, प्राप्नोति चाऽवहीलनाम् ।
निष्कण्टका यथा वृत्तिः, लभते पादमर्द्दनम् ॥२५७॥

अधमा धनमिच्छन्ति, धनमानौ हि मध्यमाः ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति, मानो हि महतां धनम् ॥२५८॥

स्थानेऽनुरागः शोभाय, नाऽस्थाने विहितोऽपि हि ।
काचे प्राचि मणिभ्रान्तिस्तत्फलाय भवेच्च किम्? ॥२५९॥

गुणाऽनुरागः कर्तव्यो, नाऽगुणेष्वपि किञ्चन ।
गुणी च गुणरागी च, विरलः सज्जनो भवेद् ॥२६०॥

गौरवाय गुणा एव, जायन्ते न च डम्बराः[१] ।
वानेयं गृह्यते पुष्पं, त्यज्यतेऽप्यङ्गजो मलः ॥२६१॥

केवलेनैव रूपेण, गुणा आयन्ति नैव यत् ।
किं चाम्रफलवद् ग्राह्यं, स्यादिन्द्रवारुणी-फलम् ॥२६२॥

मुर्खेणाऽनेन सार्धं हि, सृतं मे भोगवाञ्छया ।
अत एव हि भोक्ष्यामि, निजं कर्म समर्ज्जितम् ॥२६३॥

अतः परं न वक्तव्यं, अनया वार्त्तयाऽप्यलम् ।
याहि त्वं निजकार्याणि, प्रगुणीकुरु साम्प्रतम् ॥२६४॥

श्रुत्वा निर्भत्सनावाक्यं, निवृत्ता सा सखी तदा ।
समग्रां देहशुश्रूषां, मन्त्रिणः प्रकरोति च ॥२६५॥

१. गुणाः एव गौरवाय, न तु ज्ञाने सति विपुलाडम्बरः गौरवाय ।

सेवां स कुर्वन्ननिशं, राज्ञो हृदि तथावसत् ।
यथा गुणेन केनाऽपि, नाऽन्यः स्थितिमचीकरद् ॥२६६॥

विवेक-विलासे- यदुक्तम्-

एकान्ते मधुरैर्वाक्यैः, सान्त्वयन्नहितात्प्रभुः ।
वारयेदन्यथा हि स्यादेष स्वयमुपेक्षितः ॥२६७॥

मौनीकुर्याद्यदि स्वामी, युक्तमप्यवमन्यते ।
प्रंभोरग्रे न वाच्यं च, वैरिणो गुणकीर्तनम् ॥२६८॥

गुणप्रियो नृपोऽन्येद्युरिति दध्यौ गुणैः समा ।
अस्य कान्ताऽस्ति वा नास्ति, क्व योगः सर्वसन्निभः ? ॥२६९॥

ज्ञास्यामः कथमेतस्य, संयोगो गुणसन्निभः ।
गुणाऽधिको वा हीनो वा, विद्यते वा न विद्यते? ॥२७०॥

परं केनाप्युपायेनाऽवबोध्योऽयं गवेष्यते ।
यतो बुद्धिमतां पुंसां, किमसाध्यं भवेद् भुवि ॥२७१॥ यतः-

"उपायेन बलिर्बद्धः, उपायेन च रावणः ।
उपायेन हृता सीता, उपायैः किं न सिध्यति ॥२७२॥"

उपायेन हि यत्कुर्याद्, यन्न शक्यं पराक्रमैः ।
काक्या कनकसूत्रेण, कृष्ण-सर्पो निपातितः ॥२७३॥

इत्थं चिन्तयतस्तस्य, उपायः स्मृतिमागतः ।
अमात्यपदसम्बन्धिभोजनं प्रार्थ्यते हि सः ॥२७४॥

सेवाऽऽगतस्य राजाथ, व्याजहारेति सद्वचः ।
विवेकिनोऽपि मुह्यन्ते, क्वाप्यहो ! तव सन्निभाः ॥२७५॥

अमात्यपदमापाद्य, न दत्तं भोजनं त्वया ।
अतः प्रातस्तवाऽऽवासे, भोक्ष्यामश्च सपरिच्छदाः ॥२७६॥

इति भूपवचः श्रुत्वा, साशङ्कोऽभूच्च मन्त्रिराट् ।
तथाऽप्यङ्गीचकाराऽसौ, राज्ञामाज्ञा हि दुस्त्यजा ॥२७७॥

ततः सोऽपि गृहं गत्वा, विषण्णः शून्यमानसः ।
विमृश्य गृहवृत्तान्तं, तस्थौ चिन्ताऽऽतुरः क्वचिद् ॥२७८॥

किं कृतं मन्त्रिपुत्रेण, किं करिष्यति सोऽल्पधीः ।
दुर्दैवकृतमेतच्च, मया सर्वं च सह्यते ॥२७९॥

अवश्यं भाविभावानां, प्रतिकारो भवेद्यदि ।
तदा दुःखैर्न बाध्यन्ते, नल-राम-युधिष्ठिराः ॥२८०॥

इति चिन्तयतस्तस्य, भोजनाऽवसरो ययौ ।
तदैवागत्य विज्ञप्तं, देहशुश्रूषया स्त्रिया ॥२८१॥

स्वामिन्नद्य सविच्छायं, दृश्यते किं त्वदाऽऽननम् ? ।
किं चिन्ता बाधते देहं ?, किं वा व्याधिरमान्यता[१] ॥२८२॥

किं वा ते द्रव्यनाशोऽभूत् ?, किं वा स्वजनविच्युतिः ? ।
किं वा पराभवं दुःखं ?, किं वा ते स्मृतिमागतम् ? ॥२८३॥

१. किं वा राज्ञा अपमानता कृता ?

येन भोजनवेलाऽपि, व्यतीता नाऽवबुध्यते ।
भोजनस्यैव वार्ताऽपि, किमिति क्रियते नहि ? ॥२८४॥

इति कर्मनियोगिन्या, पृष्टो दुःखस्य कारणम् ।
ततश्च कथयामास, मन्त्रीशो दुःखकारणम् ॥२८५॥

न मे व्याधेः पराघातो, न च राज्ञोऽपमानता ।
न च द्रव्यस्य नाशोऽस्ति, न च स्वजनविच्युतिः ॥२८६॥

पराभवो न केनाऽपि, विहितो मृगलोचने ! ।
अयाचि भोजनं राज्ञा, तत्र मूढोऽस्मि साम्प्रतम् ॥२८७॥

राजाऽऽदेशो हि दुस्तरो, दुःसाध्या त्वत्सखी पुनः ।
अयं न्यायः समाऽऽयात, इतो व्याघ्र इतस्तटी ॥२८८॥

गृहसूत्रं न वेत्त्येषा, व्यवहारं (च) विशेषतः ।
युक्ताऽयुक्तं स्वगर्वेण, कथं कालं गमिष्यति ॥२८९॥

भोजनं च न यच्छामि, तदा राजा प्रकुप्यति ।
तत्कथं दीयते वाचा-ऽप्यसम्मत्या निजस्त्रियः ॥२९०॥

मयि कष्टे समाऽऽयाते, पश्चात् सर्वं च ज्ञास्यते ।
साम्प्रतं तु न जानाति, सर्वं च समयोचितम् ॥२९१॥

अतस्त्वं याहि तत्राऽऽशु, त्वत्स्वामिन्यै निवेदय ।
यद्येषाङ्गीकरोत्येवं, राज्ञे च परिवेषणम् ॥२९२॥

तदा मत्कार्यसंसिद्धि-र्महत्त्वं च भवेन्मम ।
राजा प्रसन्नः स्यादेव, भोजनं च करोम्यहम् ॥२९३॥ युग्मम्-

अनया चिन्तया भद्रे !, विस्मृतं भोजनं मम ।
अतः कालोऽपि न ज्ञातो, गच्छन्नपि यथातथा ॥२९४॥

अन्यथा भोजनेनाऽल-मद्य भुक्तेन किं मम ? ।
इत्युक्ता सा च वेगेन, स्वामिन्याः सन्निधौ ययौ ॥२९५॥

स्वामिन्यै साऽपि तच्चाऽऽह, देवि ! युक्तं न वेत्ति यद् ।
उपेक्ष्यते पतिः प्राज्ञो, मान्यो भूपादिपूर्जनैः ॥२९६॥

निर्दाक्षिण्यं न क्रियते, तेन स्यादविदग्धता ।
ततोऽप्युभयलोकस्य, भ्रंशः स्यात् सुविनिश्चितम् ॥२९७॥

निर्दाक्षिण्याद् गुणवतो, गुणा मालिन्यतां ययुः ।
विचित्राश्चित्ररचना, विलुठत्कज्जलादिव ॥२९८॥

निर्दाक्षिण्याद् बुद्धिमतो, बुद्धिर्नश्यति दूरतः ।
वैदग्धी बन्धुरस्याऽपि, दौर्भाग्यादिव कामिनी ॥२९९॥

दाक्षिण्याच्च गुणाधारो, दाक्षिण्याच्च विदग्धता ।
दाक्षिण्यादेव जायन्ते, कान्तिकीर्तिमतिश्रियः ॥३००॥

जगृहे भवदेवेन, भ्रातुर्दाक्षिण्यतो व्रतम् ।
त्यक्त्वार्द्धमण्डितां नारीं, तीर्णो जातः सुखाऽऽस्पदम् ॥३०१॥

गुरोर्मातुः प्रवर्तिन्याः, पाठकस्य यथाक्रमम् ।
द्वादशाब्दीं च दाक्षिण्यात्क्षुल्लकर्षिः स्थितो व्रते ॥३०२॥

दाक्षिण्याल्लक्ष्मणः सेहे, रामस्य वनवासताम् ।
कदर्थनां च बहुकालं, पश्चाद् राज्यस्य सम्पदाम् ॥३०३॥

दाक्षिण्यात्स्नेहवृद्धिः स्यात्, स्नेहाद् विश्वासता भवेत् ।
विश्वासादथ सम्पत्तिरर्थात्सौख्यपरम्परा ॥३०४॥

दाक्षिण्यं युज्यते कर्तुं, कुलीनानां विशेषतः ।
दाक्षिण्यं विनयश्चेति, कुलीनानामिदं व्रतम् ॥३०५॥

सुरसुन्दरभूपस्य, पुत्री त्वमसि शुद्धजा ।
अत एव हि कर्तव्यं, दाक्षिण्यं च यथातथा ॥३०६॥

प्रायः सर्वजने कर्तुं, दाक्षिण्यं युज्यते तव ।
किं पुनश्च चकोराक्षि !, निजकान्ते विशेषतः ॥३०७॥

नेहते स्नेहलां दृष्टिं, त्वत्तः सस्नेहभाषणम् ।
भक्तिं च विनयं कर्तुं, राज्ञश्च परिवेषणम् [ईहते] ॥३०८॥

मन्त्रिणश्चाऽर्थसंसिद्धिर्भूपस्तुष्टो भविष्यति ।
गृहशोभा ते भाविनी, परिवेषणकृत्त्वयि ॥३०९॥

इत्यादियुक्तिभिः सख्या, बोधिता नृपनन्दिनी ।
सा तदा तद्वचो मेने, करिष्ये परिवेषणम् ॥३१०॥

अन्याः समानलावण्य-वेषालङ्कारधारिण्यः ।
यदि मत्सदृशा नार्यो, भविष्यन्ति हि षोडश ॥३११॥ युग्मम्

तया तदुक्तं तस्याऽग्रे, सर्व्वमेतन्निवेदितम् ।
तच्छ्रुत्वा मन्त्रिराट् हृष्टः, पुनरेवमलीलपत् ॥३१२॥

साध्यं मह्यं जगत्सर्वं, दुस्साध्यं नास्ति किञ्चन ।
असाध्येयं चकोराक्षि !, त्वदीया स्वामिनी यतः ॥३१३॥

इत्युक्त्वा तां प्रशंस्याथ, भव्यमेतन्निवेदितम् ।
ततश्च सर्वसामग्रीं, कर्तुं लग्नोऽथ मन्त्रिराड् ॥३१४॥

स कृत्वा सर्व्वसामग्रीं, नृपमाकारयत् प्रगे ।
आजगाम नृपो भोक्तुं, मिषाद् द्रष्टुं तदङ्गनाम् ॥३१५॥

आसनानि ददुः केऽपि, ददुः स्थालानि केचन ।
करक्षालननीराणि, ददुरन्ये नियोगिनः ॥३१६॥

ततः समानवेषाभिः, षोडशस्त्रीभिरन्विता ।
स्वयं तु स्वसखीयुक्ता, चागता तत्र मण्डपे ॥३१७॥

एवं सप्तदशस्त्रीभि-र्युता सौभाग्यसुन्दरी ।
सा समागत्य सद्युक्त्या, चकार परिवेषणम् ॥३१८॥

एकया वरकामिन्या, मुक्तं भूपादि-भाजने ।
सुस्वादं शर्क्करातोयं, साक्षादमृत-सन्निभम् ॥३१९॥

ततः फलहली चैव, एकया परिवेषिता ।
सज्जीकृतानि खज्जानि, चैकया तत्र भाजने ॥३२०॥

सद्यो दत्ताश्चैकयाऽपि, सिंहकेशरमोदकाः ।
एकया मौक्तिकाऽऽकारा, मुक्ता मौक्तिकमोदकाः ।३२१॥

एकया खण्डसंयुक्ता, मण्डकाः परिवेषिताः ।
ग्राह्यास्तत्राऽस्य महती, मुक्ता मुरूक्किका पुनः ॥३२२॥

एकयाऽमृतघटयाभा, दधिवद्यो वितेनिरे ।
घृतपूराः पूर्यापूण्या, अन्यया परिवेषिताः ॥३२३॥

क्षीराब्धिफेनसदृशाः, फेनिकाश्चान्यया़ऽपि च ।
संश्रीका[1] चान्यया मुक्ता, लपनश्रीर्मनोहरा ॥३२४॥

एकया शालयो मुक्ताः, केतकीदलसन्निभाः ।
दालिकानां च सम्पर्कोऽन्यया तत्र कृतो द्रुतम् ॥३२५॥

रसानामग्रिमं सद्य-स्तापितं शुभगन्धियुक्[2] ।
दत्तं भोजनस्य सारमेकया प्रचुरं घृतम् ॥३२६॥

व्यञ्जनान्येकया तत्र, मुक्तानि प्रचुराण्यपि ।
मण्डकाः खण्डसंयुक्ताश्चैकया परिवेषिताः ॥३२७॥

करम्बकाऽदिकं तत्र, चैकया परिवेषितम् ।
दत्तं सुस्वादुपयसा, चैकयाऽऽचमनादिकम् ॥३२८॥

वायुव्यञ्जनकं तत्र, ताम्बूलप्रमुखं तदा ।
कृतं सौभाग्यसुन्दर्या, तासां मध्यस्थयाऽपि च ॥३२९॥

समानरूपवेषासु, चैकवृन्तोद्धृतास्विव[3] ।
मन्त्रिपत्न्यास्तदा तासु, व्यक्तिर्लेभे न भूभुजा ॥३३०॥

विभुज्य सपरिवारो, मन्त्रिणा परितोषितः ।
वस्त्राऽश्वादि-प्रदानेन, नृपोऽथ स्वगृहं ययौ ॥३३१॥

ततः सत्कारमादाय, प्रसन्नो मन्त्रिणोऽभवत् ।
तस्यास्तथेति चातुर्यं, दृष्ट्वा हृष्टो नृपस्तदा ॥३३२॥

---

१. विविधोत्तमपदार्थ-युक्ता । २. शुभः गन्धः अस्य स शुभगन्धिः पदार्थः तेन युक्तम्- । ३. एकवृन्तोद्धृतानि पत्राणि प्रायः समानवर्णादियुक्तानि भवन्ति ।

अथाऽन्यदा नृपो दध्यौ, भोजनाऽवसरे मया ।
न ज्ञाता मन्त्रिणः पत्नी, सदृशस्त्रीवृता यतः ॥३३३॥

अथ केनाप्युपायेन, ज्ञास्यते सा तदङ्गना ।
ज्ञाता गवेषते सम्यग्, यतो मे कौतुकं महद् ॥३३४॥

उपायः कोऽपि चाऽस्त्येव, येन सा ज्ञायते यतः ।
इति चिन्तयतस्तस्य, उपायः स्मृतिमागतः ॥३३५॥

चिन्तयित्वेति भूपाल-स्तद्दर्शनसमुत्सुकः ।
व्याजहार ततश्चैवं, सभाऽऽसीनं च मन्त्रिणम् ॥३३६॥

मन्त्रीश ! निजराज्यस्य, नीतिं वेत्सि न वेत्सि वा ।
सोऽवदद् देव ! नो वेद्मि, तव राज्यस्थितिं वद ॥३३७॥

राजा प्रोवाच भो भद्र !, नवीनो मन्त्रिपुङ्गवः ।
अस्मिन् वर्षे च जातस्त्वं, मन्त्री च मम साम्प्रतम् ॥३३८॥

अत्राऽस्ति विजया नाम्नी, पाद्रदेवी पुराद् बहिः ।
सा सत्यवादिनी देश-नगरे क्षेमकारिणी ॥३३९॥

तस्याश्च प्रतिवर्षान्ते, विधिना क्रियते जनैः ।
यात्रा पुष्पफलै रम्यैश्चन्दनैश्च तदर्च्चनम् ॥३४०॥

पुत्रे जाते च शान्त्यर्थं, तन्माता निजनन्दनम् ।
लात्वा नृत्यति सद्योऽपि, यादृगाऽऽयाति तादृशम् ॥३४१॥

दम्पत्योरपि सञ्जाते, पाणिग्रहणकर्म्मणि ।
तदा तत्र विधिः सोऽपि, ज्ञातव्यः स्वमनीषया ॥३४२॥

राजाऽपि प्राप्तराज्योऽपि, तत्र गत्वा च तत्क्षणात् ।
तं विधिं च वितत्याऽथ, पुनरायाति स्वौकसि ॥३४३॥

मन्त्री मन्त्रिपदं प्राप्य, तत्र गत्वा च तं विधिम् ।
कृत्वा च पुनरायाति, स्वेच्छया निजमन्दिरम् ॥३४४॥

महाऽमात्यो भवेद्यस्तु, सोऽपि गत्वा तदाऽऽलये ।
वादयति तन्नरो वाद्यं, तन्नारी नृत्यति स्वयम् ॥३४५॥

अतस्त्वमेव मन्त्रीशः, सञ्जातः साम्प्रतं मम ।
शान्त्यर्थं युज्यते कर्तुं, विधिश्चाऽयं तवाऽधुना ॥३४६॥

आद्ये यामेऽद्य यामिन्या, विजयाभुवने वयम् ।
अन्योऽपि च जनः सर्व्वः, समेष्यामः समीक्षितुम् ॥३४७॥

भवद्भिर्भार्यया युक्तैः, कर्तव्यः प्रेक्षणः[१] क्षणः ।
यादृशस्तु समायाति, तादृशोऽत्र विधीयताम् ॥३४८॥

नात्र त्रपा विधेयाऽथ, यतो रीतिश्च वर्तते ।
मर्य्यादोल्लङ्घनं नैव, कर्तुं केनाऽपि पार्यते ॥३४९॥

आदेशमिति सम्प्राप्य, विमनस्को ययौ गृहम् ।
तरिष्यामि कथं चाऽद्य, भूपाऽऽदेशमहार्ण्णवम् ? ॥३५०॥

दुःसाध्येयं च मत्पत्नी, भूपादेशस्तु दुस्तरः ।
उपर्युपरि चाऽऽयाति, मम कष्ट-परम्परा ॥३५१॥

---

१. प्रकृष्टं ईक्षणं यस्मिन्सः ।

इति चिन्तापरं वीक्ष्य, सा पप्रच्छ नियोगिनी ।
पूर्ववद् दृश्यते नाथ !, कथं तन्मे निवेदय ॥३५२॥

दीर्घं निःश्वस्य मन्त्रीशः, कथयामास तां प्रति ।
मूलादपि समारभ्य, यात्रावृत्तमशेषतः ॥३५३॥

अथ त्वं तत्र गत्वाऽऽशु, त्वत्स्वामिन्यै निवेदय ।
त्वमेवाऽसि चकोराक्षि !, अस्मिन् रोगे चिकित्सिका ॥३५४॥

ततस्तयाऽपि तत्तस्याः, स्वामिन्या विनिवेदितम् ।
हसित्वा सा बभाणेदं, किमयुक्तं च जल्पसि ॥३५५॥

अहो ! भरतशास्त्रेषु, पारगोऽयं च मत्पतिः ।
यदीयं गन्धमात्रं च, वेत्ति किं मूर्खशेखरः ? ॥३५६॥

अहं भरतशास्त्रस्य, पारगाऽस्मि विशेषतः ।
तन्नाटकविधौ चाऽतिदक्षाऽस्मीति न वेत्सि किम् ? ॥३५७॥

कुर्व्वत्यां[१] मम तल्लास्यं, स किं वादयतु बुधः ।
ओँकारमात्रं जानाति, कर्तुं च सखि ! मत्पुरः ? ॥३५८॥

मृदङ्गस्य च धौङ्कारं, कर्तुं पूर्वं च वेत्त्यसौ ।
ताल-मानस्य वार्ताऽपि, श्रुताऽनेन कदापि हि ? ॥३५९॥

मृदङ्गस्य मुखं पृष्ठं, मध्यं वा वेत्ति किं पुनः ।
कुत्र वा ध्रियते तं च ?, कथं वा मुच्यते च तम् ? ॥३६०॥

---

१. अनादरे षष्ठी ।

शीर्षे बाहौ च पृष्टे वा, पादयोर्वा कटीतटे ।
स्कन्धे वाऽथ करे वेत्ति, मुच्यते वा मुखे कुतः ॥३६१॥

मृदङ्गस्य च विदिशं, दिशं वेत्ति च नो पुनः ।
किं पुनर्वादने तस्य, काऽपीच्छा सखि ! तद् वद ॥३६२॥

सर्पाकारतया वेत्ति, रेखामातृ(तु)धुरि स्थिताम् ।
बिभ्यत्येष च तां दृष्ट्वा, कुण्डलाकारधारिणीम् ॥३६३॥

बहवश्च मिलिष्यन्ति, तत्र तद्वाद्यकोविदाः ।
तेषां मध्ये क्षणमपि, स्थातुं शक्नोत्यसौ पुमान् ? ॥३६४॥

भविष्यत्युपहासाय, केवलं नृपपर्षदि ।
असौ ममाऽपि लघुतां, करिष्यति तदैव हि ॥३६५॥

असौ नाट्यविधिं नैव, ताल-मानं न वेत्ति च ।
न च गीत-स्थितिं तेन, कथं तं कारयिष्यति ? ॥३६६॥

अतो नाट्यविधेरेष, मुक्त्वाऽभिप्रायमुत्तमम् ।
मद्धनं विलसन् नित्यं, तिष्ठतु स्वगृहे सुखम् ॥३६७॥

असौ किञ्चिन्न जानाति, बाढं मूर्खनराधिपः ।
अतस्तेन समं तत्र, गमनं मे त्रपाकरम् ॥३६८॥

सर्वथा न व्रजिष्यामि, यदि गन्तुं विलोक्यते ।
मदीयं वेषमादाया-ऽनेन सार्धं तु सा व्रजेत् ॥३६९॥

आवयोरन्तरं नास्ति, वपुषा वयसाऽपि च ।
यदि त्वं च गता भद्रे !, सप्तवारं गता ह्यहम् ॥३७०॥

अथवा त्वं सुरूपाऽसि, स्ववयस्काऽसि मत्समा ।
अत्यन्त-चतुरा चाऽसि, याने योग्याऽसि तत्समम् ॥३७१॥

सोऽपि नाट्यविधिं भद्रे !, न वेत्ति त्वमपि स्फुटम् ।
अतोऽस्तु युवयोर्योगः तत्राऽऽशु सदृशोरपि ॥३७२॥

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य, किञ्चिद् दूना सखी तदा ।
तामूचे चाऽतिमधुरं, स्वस्याऽन्यस्य सुखावहम् ॥३७३॥

हे देवि ! यत्त्वया प्रोक्तं, तत् सत्यं नो हितावहम् ।
ईदृशं वचनं वक्तुं, न युक्तं च भवादृशाम् ॥३७४॥

अतो गुणवती चाऽसि, कलावत्यसि त्वत्समाः ।
नान्या नार्यश्च विद्यन्ते, कलाभिश्च गुणैरपि ॥३७५॥

बालिशानामिदं वाक्यं, न च सद्गुणशालिनाम् ।
प्रायस्तु सज्जना एव, जल्पन्ति मधुरं वचः ॥३७६॥

परुषं नैव जल्पन्ति, न तुच्छं नाऽपि हीलितम् ।
न निन्दां नैव गर्हां च, कुर्वन्ति सज्जना अपि ॥३७७॥ यदुक्तम्-

परुसं न भणसि भणिओ विहससि हसिऊण जंपस महुरं ।
सज्जणं तुज्झ सहावो न याणिमो कस्स सारिच्छो ॥३७८॥

"न हसन्ति परं थुयन्ति अप्पयं पि य सया विजंपंति ।
एसो सजणसहावो नमो नमो ताण पुरिसाणं ॥३७९॥"

एवंविधाऽसि देवि ! त्वं, दुग्धे काञ्जिकबिन्दुवत् ।
चन्द्रे कलङ्कवद् भद्रे !, त्वयि गर्वो न शोभते ॥३८०॥

रूपादीनां मदो याति, ज्ञानलेशेन तत्क्षणाद् ।
ज्ञानस्यैव मदो नैव, धर्मकृत्यशतैरपि ॥३८१॥

आज्यादीनां यथाजीर्णमौषधैर्याति दूरतः ।
औषधस्याप्यजीर्णं तु, न च्छेत्तुं शक्यते बुधैः ॥३८२॥ यतः-

ज्ञानं मददर्पहरं माद्यति यस्तेन तस्य को वैद्यः ।
अमृतं यस्य विषायति, तस्य चिकित्सा कुतो भवति ॥३८३॥

अन्यत्रापि कृतो मानोऽनर्थायैवेह जायते ।
ज्ञाने च विहितः सोऽपि, भवान्यं वै च दुःखदः ॥३८४॥

अत एव महादेवि !, ज्ञानगर्वं परित्यज ।
ज्ञानं वृद्धितया याति, तथा कुरु नृपाऽऽत्मजे! ॥३८५॥ यतः-

ज्ञानोपकारतो नित्यं, ज्ञानवृद्धिश्च जायते ।
ज्ञानवान् ज्ञानदानेन, समयेऽपि निगद्यते ॥३८६॥

ज्ञानवान् ज्ञानदानेन, निर्भयोऽभयदानतः ।
अन्नदानात् सुखी नित्यं, निर्बाधो भेषजाद् भवेत् ॥३८७॥

यथा मेघरथेनाशु, च्छित्त्वा देहं निजं पलम् ।
पारापतस्य रक्षार्थं, श्येनायादायि तत्क्षणात् ॥३८८॥

तेनोपकारपुण्येन, तीर्थत्वं[१] चक्रवर्तिताम् ।
लब्ध्वा सोऽपि भवात्तीर्णः, सम्प्राप पदमव्ययम् ॥३८९॥ युग्मम्-

जनानामुपकाराय, कृत्वा चास्तमनो[२] दयाम् ।
विध्वंसयति निःशेषं, गभस्ति-स्तिमरं यथा ॥३९०॥

१. तीर्थकृत्त्वं इत्यर्थः । २. अस्तम् अनं = गति यस्य सः ।

तस्योपकारतः सोऽपि, सहस्रकिरणोऽभवत् ।
तापकोऽपि लेभे ख्यातिमसौ दिनमणिर्जयी ॥३९१॥ युग्मम्-

धान्यवृद्ध्युपकारेण, राजा इत्यभिधीयते ।
निष्कलोऽपि निशानाथो, नित्यं दोषाकरोऽपि सन् ॥३९२॥

जलबिन्दुप्रदानेन, घनः श्याममुखोऽपि हि ।
लोके जीवनद इति, ख्यातो धूमोद्भवोऽपि सन् ॥३९३॥

लक्ष्मीदानोपकारेण, सागरो मकराकरः ।
सक्षारो लभते ख्यातिं, रत्नाकर इति स्फुटम् ॥३९४॥

तीर्थरक्षोपकारेण, चपला नीचगामिनी ।
लोकेऽपि लभते ख्यातिं, गङ्गेयं पापमोचिका ॥३९५॥

जिना जनोपकाराय, दानं यच्छन्ति वार्षिकम् ।
तेन पुण्यानुभावेन, प्राप्नुवन्त्यार्हतां श्रियम् ॥३९६॥

तज्ज्ञानाऽभिमानं मुक्त्वा, कुरु नाटकमुत्तमम् ।
येनाऽपि भूपतिस्तुष्टः, करोत्यस्य समीहितम् ॥३९७॥ किञ्च-

''नरो न निन्द्यते भद्रे !, यादृशस्तादृशोऽपि हि ।
विशेषतः पतिर्यस्तु, गौरव्यो हि यथातथा ॥३९८॥ यदुक्तम्-

नरः सुश्लाघ्यतां याति, न च नारी कदाचन ।
भूपश्चक्री तीर्थनाथो, नरो भवति नाङ्गना ॥३९९॥

त्वदीयेनाऽपि वेशेण, मत्तः कार्यं न सेत्स्यति ।
यद्यप्यहं त्वया देवि !, गौरवार्हा कृताऽधुना ॥४००॥

तथाऽप्यहं तव स्थानं, रुणध्मि साम्प्रतं कथम् ।
या दासी सा तु दासीति, कथं स्वामित्वमेधते ? ॥४०१॥

मणिर्लुठति पादाग्रे, काचः शिरसि धार्यते ।
क्रय-विक्रयवेलायां, काचः काचो मणिर्मणिः ॥४०२॥

पुनः प्रोवाच कस्येदं, दूषणं देवि ? दीयते ? ।
दैवेन कृतकार्याणां, कः क्षमः परिमार्जितुम् ॥४०३॥

सुख-दुःखानां कर्ता, हर्ताऽपि न कोऽपि कस्यचिज्जन्तोः ।
इति चिन्तय निजबुद्ध्या, पुराकृतं भुज्यते कर्म ॥४०४॥

मा व्रज खेदं मा गच्छ दीनतां मा कुरुष्व क्वचित्कोपम् ।
तत्परिणयत्यवश्यं यदाऽऽत्मनोपार्जितं पूर्वम् ॥४०५॥

तत्प्रार्थितमपि यत्नान्न भवेदिह यत्पूर्वविहितं स्यात् ।
मनसि न कार्यः शोको यद् भाव्यं तद् बलाद् भवति ॥४०६॥

धनं परिकरः कस्य, न च कस्य भवेद् भवेत् ।
पुण्याद्यद् येन सम्प्राप्तं, तत्तस्यैव न चान्यथा ॥४०७॥ यतः-

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो, देवोऽपि तं लङ्घयितुं न शक्तः ।
तस्मान्न शोको न च विस्मयो मे, यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम् ॥४०८॥

मुधाऽभिमानश्च ते देवि !, कलायाश्च विशेषतः ।
कला च सुकला पुण्यादन्यथा विकला भवेद् ॥४०९॥ अन्यच्च-

स्वयमेव कृतं कार्यं, स्वयमेव हि खिद्यते ।
दूषणं दीयतेऽन्यस्य, केयं त्वन्मूर्खता पुनः ॥४१०॥

परीक्ष्य क्रियते वस्तु, आदृतं नैव मुच्यते ।
सगुणं निर्गुणं वाऽपि, हरो धत्तूरकं यथा ॥४११॥

यद्येवं वेत्ति न पुन-स्त्वं सर्वं वेत्सि मानिनि ! ।
वाद्यते यादृगाऽऽतोद्यं, तादृगेव हि नृत्यताम् ॥४१२॥

सम्यगेव हि चातुर्यं, तदैव ज्ञायते तव ।
यादृग् वाति च वाताली, गृह्यते तादृगाऽऽश्रयः ॥४१३॥

दूषणं च न कस्यापि, दीयते न च भाष्यते ।
परस्य दूषणे प्रोक्ते, स्वस्यैव लघुता भवेद् ॥४१४॥

दूषणं परमुपैति नोत्तमो मध्यमो स्पृशति भाषते न च ।
वीक्ष्य पार्श्वमथ भाषतेऽधमो रारटीति सहसाऽधमाधमः ॥४१५॥

पिष्टस्य पेषणं किं स्यादुज्ज्वाल्यते च निर्म्मलम् ।
शिष्यते किं सरस्वत्या-स्तत्पुरस्तात् किमुच्यते ॥४१६॥

इत्यादिवचनैः सख्या, बोधिता साप्यबुध्यत ।
तदा तद्वचनं मेने, युक्तियुक्तं नृपात्मजा ॥४१७॥

तयाऽपि मन्त्रिणे प्रोक्तं, तत्र गत्वाऽथ मन्त्रिणा ।
प्रच्छन्नेनाऽपि तत्सर्वं, श्रुतं श्रुतिसुखावहम् ॥४१८॥

मन्त्रीशोऽचिन्तयच्चित्ते, एतयोरन्तरं कियत् ।
कीदृशी नृपपुत्रीयं, विरक्ता मयि मत्सरी ॥४१९॥

गर्वोऽस्ति कीदृशश्चास्यां, सत्कलायाः धनस्य च ।
स्वगर्व्वेणैवं सकलं, तृणवन्मन्यते जगद् ॥४२०॥

परं च ज्ञास्यति फलमेषा गर्व्वमहातरोः ।
मदीया सत्कला कल्प-लतिकेव फलिष्यति ॥४२१॥

साम्प्रतं ज्ञास्यते व्यक्तिं, कलाया उभयोरपि ।
काञ्चनस्याऽपि सद्व्यक्तिः, कषपट्टं विना नहि ॥४२२॥

कीदृशीयं सखी तस्याः, सज्जनानां धुरि स्थिता ।
केनाऽपि कर्मदोषेण, जाता कर्म्मकरी पुनः ॥४२३॥

तथाऽपि स्वगुणैरेव, जाता गुणवतां धुरि ।
गुणैरेव महत्त्वं स्याद्, गौरवाऽर्हा गुणा यतः ॥४२४॥

गौरवाय गुणा एव, जायन्ते नैवडम्बराः ।
वानेयं गृह्यते पुष्पं, त्यज्यतेऽप्यङ्गजो मलः ॥४२५॥

इत्थं विचिन्त्य मन्त्रीशो, दिनकृत्यं विधाय च ।
सर्वां च नृत्यसामग्रीं, प्रगुणां च चकार सः ॥४२६॥

पुरवप्राद्बहिर्देव्याः, प्रासादे नृपतौ गते ।
मन्त्र्यपि प्रियया सार्धं, जगामोल्लसिताऽऽननः ॥४२७॥

सर्वेऽपि नागरास्तत्र, तत्कौतुकदिदृक्षया ।
स्पर्धया मिलिता दिव्य-नेपथ्यादि-विभूषिताः ॥४२८॥

स्वस्वस्थाने निषण्णेषु, भूपादिषु नरेषु च ।
नृत्यवेषं विधायाऽगाद्रङ्गभूमिं नृपात्मजा ॥४२९॥

विधाय मुरजं सज्जं, रङ्गभूम्यामथाऽविशद् ।
मन्त्रीशः संस्थितः पार्श्वे, कन्यायास्तत्र नाटके ॥४३०॥

धौं-धौंकारमथाऽऽसूत्र्य, विविधैश्च पटादिभिः ।
तालमानलयैर्वाद्यं वादयामास मन्त्रिराड् ॥४३१॥

प्रससार तथा कोऽपि, रसो रसविदां हृदि ।
तदा तैः स्फुटमाख्यायि, विश्वं जेताऽद्वितीयकम् ॥४३२॥

तथा तत्र कलास्तेनाऽपूर्वाश्चाऽपि प्रकाशिताः ।
यथा सभासदः सर्व्वे, तन्मया अभवंस्तदा ॥४३३॥

ताल-मान-लयैस्तस्य, विस्मिता सा नृपाऽऽत्मजा ।
अचिन्तयच्च तदहो !, एष किं मत्पतिर्भवेद् ? ॥४३४॥

किं वा तेनाऽऽत्मनः स्थान, आनीतश्चाऽन्य एव हि ।
अपूर्वेयं कला यस्मान्न दृष्टा न श्रुता मया ॥४३५॥

अहं कलावतां मुख्या, मत्तोऽयमधिकः खलु ।
इति सञ्चिन्त्य सा तस्थौ, वर्द्धन्[1]नृत्येऽपि तत्क्षणाद् ॥४३६॥

ततो जगाद मन्त्रीशः, चकोराक्षि ! द्रुतं त्वया ।
असम्पूर्ण्णे तालमाने, तालभ्रंशः कथं कृतः ? ॥४३७॥

कलावतां च त्वं मुख्या, अहं तु मूर्खशेखरः ।
एकवारं च विज्ञानं, मदीयमवधारय ॥४३८॥

ततस्तद्वाक्यमाकर्ण्य, सस्नेहं सा व्यलोकयत् ।
तदैव प्रथमं जातं, सस्नेहाऽऽलोकनं तयोः ॥४३९॥

१. वृध धातोः आत्मनेपदेऽपि आर्षत्वात् अत्र परस्मै० ।

अदृष्टाश्रुतपूर्वां तां, कलां तं सा निरीक्ष्य च ।
तमेव भरताचार्यं, मेने सौभाग्यसुन्दरी ॥४४०॥

इयती कलाऽनेनाऽपि, शिक्षिता यत्र तत्र वा ।
सङ्गोप्य रक्षिता सोढा, कथं बालकदर्थना ॥४४१॥

पूर्व्वं च शिक्षिता कुत्र, भिया तत्र च गोपिता ।
येन केनाऽप्युपायेन, जातो विद्याब्धिपारगः ॥४४२॥

मूर्खत्वं च मयाऽकारि, येनाऽसावपमानितः ।
सख्युश्च वचनं नैव, मेने सत्यमपि स्फुटम् ॥४४३॥

लोकोक्तिश्च कदाऽप्येषा, कूटा नैव भवेदिह ।
विद्याविलास इत्येष, श्रुतं तदपि नाऽऽदृतम् ॥४४४॥

सख्यापि बोधिता बाढं, परीक्षाऽपि कृता नहि ।
कथं तदपि मूर्खत्वं, दैवादपि समाऽऽगतम् ? ॥४४५॥

ईदृशो गुणवानेष, हहा ! ज्ञातो मया नहि ।
मत्पुण्यैरमृतं दत्तं, बलान्नैवोपलक्षितम् ॥४४६॥

अहं पुण्यवती सत्या, जाताऽनेन गुणाधिका ।
कलावती च विद्याविलासपतिना ध्रुवम् ॥४४७॥

इति सञ्चिन्त्य तन्वङ्गी, हर्षोत्फुल्लमुखाम्बुजा ।
पश्यन्ती स्निग्धया दृष्ट्या, तं पतिं च मुहुर्मुहुः ॥४४८॥

नृत्यं चकार सर्व्वाङ्ग-पुलकाङ्कितविग्रहा ।
मन्यन्ती धन्यमाऽऽत्मानं तदाऽऽदि[1] पतिनाऽमुना ॥४४९॥युग्मम्-

तयोः सदृशयोगेन, हृष्टो राजाऽपि चाऽधिकम् ।
स्वपटान् न्युञ्छनीकृत्य, दिक्षु चिक्षेप दृष्टिहृद् ॥४५०॥

ततो नृपत्याऽऽदेशेन, विसृष्टे प्रेक्षणे क्षणे ।
दधावे त्वरितं लोकः, शयनाय समुत्सुकः ॥४५१॥

राजा तन्नाटकं दृष्ट्वा, योगं च सदृशं तयोः ।
हर्षादनन्तरं दानं, दत्त्वा च स्वगृहं ययौ ॥४५२॥

मन्त्रीशः स्वप्रियां लात्वा, सस्नेहां वाहनाऽन्विताम् ।
स्वगृहाऽभिमुखं सद्य-श्चलितो वार्त्तयन् प्रियाम् ॥४५३॥

अथ मन्त्री व्रजन् मार्गे, भणितः प्रियया तया ।
मुद्रिका पतिता नाथ !, नृत्यन्त्या भुवने मम ॥४५४॥

प्रीत्याऽऽदेशममुं प्राप्य, ववलेऽथैक एव सः ।
प्रेक्षणस्थानमाऽऽपन्नस्तां ददर्श स्फुरत्प्रभाम् ॥४५५॥

आदाय यावदाऽऽयातः, प्रतोली पिहिता पुरः ।
अनाऽऽयासेन वप्रस्य, पुरस्त्रोतमथाऽविशद् ॥४५६॥

दष्टोऽहिना तदा तत्र, दैवयोगाच्च मन्त्रिराट् ।
दष्टोऽहमिति जल्पन् च, स तथा निर्गतः क्षणाद् ॥४५७॥

१. प्रथमवारम्

विषवेगाद् व्रजन्नग्रे, मूर्च्छया विस्खलत्क्रमः ।
पपात देवसेनाया, गणिकाया गृहे स तु ॥४५८॥

विज्ञाय पतितं वेश्या, दीपेनाऽशु न्यभालयत् ।
अमात्यमुपलक्ष्यैनं, निनाय भुवनोदरे ॥४५९॥

गरुडोद्गारनीरेण, जीवयित्वेति भाषितः ।
स्वामिन्नद्य कथं जाताऽवस्थेयमीदृशी तव ॥४६०॥

पुण्यप्रकर्षतो देव !, संयोगोऽभूत्तवाऽऽशु मे ।
दुर्लभस्त्वमभाग्याना-मुपकारं विना गुरुम् ॥४६१॥

अद्य मे फलितो देव !, स्फुटं भाग्यमहीरुहः ।
कल्पद्रुमाद्याः सर्व्वेऽपि, सञ्जाता वशवर्त्तिनः ॥४६२॥

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य, मन्त्री प्रोवाच तां प्रति ।
प्रसृताऽक्षि ! प्रियाकार्ये, गतोऽसो नगराद् बहिः ॥४६३॥

कार्यं कृत्वा समाऽऽगच्छन् पुरनिर्द्धमने द्रुतम् ।
दष्टो दुष्टेन सर्प्पेण, पतितोऽहं तवाऽजिरे ॥४६४॥

करुणाऽमृतसारिण्या, मृत्युतो रक्षितस्त्वया ।
अतः परं त्वदीयोऽस्मि, किङ्करः करवाणि किम् ? ॥४६५॥

किं ते यच्छामि सुभगे !, साऽवदद्देव ! नाऽपरम् ।
किञ्चदालोक्यते तूर्ण्णं, परमेतद्विलोक्यते ॥४६६॥

न गन्तव्यमितो गेहान्ममाऽऽदेशं विना प्रिय ! ।
अहं मम धनं सर्व्वं, त्वदधीनमतःपरम् ॥४६७॥

ओमित्युक्त्वा स्थितः सोऽपि, न विश्वसिति सा पुनः ।
नरः किं सरट इव, बन्धनेनाऽपि बध्यते ? ॥४६८॥

यस्या वचनमात्रेणेयती सोढा कदर्थना ।
तां मुक्त्वा गणिकावाक्यैर्न स्थास्यति च नन्वयम् ॥४६९॥

अहं जात्या गणिकाऽस्मि, परमन्यसमा नहि ।
यत एनं विना सर्वे, पुरुषा मम बान्धवाः ॥४७०॥

मत्पूर्वभवतातेन, विद्याधरवरेण तु ।
स्नेहादत्र समागत्य, मत्पुरस्तादभाणि च ॥४७१॥

वत्से ! जातिमदेन त्वं, प्राप्ताऽसि गणिकाकुलम् ।
परं त्वं स्वल्पकर्म्मत्वादस्मिन्नेव भवेऽपि च ॥४७२॥

सिद्धिं यास्यसि तन्नूनं, यतः प्रान्तशरीरिका ।
केवलज्ञानिनाऽभाणि, मत्पुरस्तादिदं वचः ॥४७३॥ युग्मम्-

कर्म्मनिर्घातनाऽर्थं च, जाता यस्मिन् कुलेऽधुना ।
तिष्ठ त्वमत्र सद्भोग-भागिनी च भविष्यसि ॥४७४॥

वेश्याऽऽचारो न कर्तव्यः, श्रयणीयो धर्म्म एव हि ।
विद्यां गृहाण प्रज्ञप्ति-प्रमुखां पाठसिद्धिदाम् ॥४७५॥

तवाऽपि पति-संयोगो, दिने स्वल्पे भविष्यति ।
सर्प्पदष्टोऽपि यो रात्रौ, पतिष्यति तवाऽजिरे ॥४७६॥

स ज्ञेयः पुरुषः श्रेष्ठो, दाता भोक्ता गुणाऽधिकः ।
मुक्तिगामी च रूपस्वी, तव भर्त्ता भविष्यति ॥४७७॥

स एवाऽयं च मे भर्ता, यो दत्तो जनकेन मे ।
कुलस्त्रीणां च स पति-र्यो दत्तो जनकेन हि ॥४७८॥

येन केनाऽप्युपायेन, रक्षणीयोऽयमेव हि ।
उपलक्ष्य च लब्धोऽस्ति, मा याति स्म तद्गृहम् ॥४७९॥

इति ध्यात्वा देवसेना, ततो विद्याबलेन सा ।
अभिमन्त्र्य दवरकं, तत्पादे च बबन्ध च ॥४८०॥

तत्प्रभावात्तदैवाऽऽशु, मन्त्रीशः शुकतामगाद् ।
मणि-मन्त्रौषधीनां हि, चिन्ताऽतीत-प्रभावकः[1] ॥४८१॥

सुवर्णपिञ्जरे क्षिप्त-स्तदैत्तद्रूपलुब्धया ।
स्थितो वचनबद्धोऽसौ, क्रियमाणो दिवा शुकः ॥४८२॥

रात्रौ तु स्वस्वभावेन जायमानोऽपि मन्त्रिराड् ।
भुञ्जानो विविधान् भोगान्, तया सह सुरोपमान् ॥४८३॥ युग्मम्

सा मन्त्रिदयिता गेहे, गतोत्कण्ठाऽतिपूरिता ।
मार्ग्गं प्रियस्य पश्यन्ती, निशां कष्टेन चानयद् ॥४८४॥

घटी यामोपमा जाता, यामो वत्सरसन्निभः ।
निशा कष्टतरी तस्याः, पत्युर्विरहतोऽभवद् ॥४८५॥

महाकष्टेन स रात्रि-प्रान्तो नीतस्तया पुनः ।
सर्व्वत्राऽन्वेषितो बाढं, शुद्धिर्लेभे तदा नहि ॥४८६॥

१. क स्वार्थे ।

प्रभातेऽपि च नाऽऽयातो, वीक्षितः सकले पुरे ।
प्रवृत्तिरपि नो लब्धा, हाहाकारो ! ऽभवत्तदा ॥४८७॥

शोकाऽऽतुरोऽभवल्लोकः, सकलोऽपि पुरे तदा ।
तद्गुणैकाग्रचित्तः सन्, व्यापारानमुचत्तदा ॥४८८॥

अहो ! रत्नमहो ! रत्नं, किं बभूव ! क्व चाऽगमत् ।
पुण्य-प्रभावतः प्राप्तं, मुधैव हारितं कथम् ? ॥४८९॥

कथं सम्प्राप्यते नूनं ?, पुरुषोत्तम एव हि ।
इति शोकपरो भूपः, सेवकानिति चाऽऽदिशद् ॥४९०॥

पुरेऽपि सकले चाऽत्र, डिण्डिमाऽऽस्फालपूर्व्वकम् ।
गत्वा त्रिकचतुष्केषु, क्रियतामिति घोषणम् ॥४९१॥

तस्य विद्याविलासस्य, शुद्धिं वदति कोऽपि यः ।
राज्याऽर्धसहितां पुत्रीं, तस्मै राजा प्रयच्छति ॥४९२॥

तथाऽपि तस्य च शुद्धिर्न केनाऽपि प्ररूपिता ।
राजाऽपि तद्वियोगार्त्तः, पश्चात्तापपरोऽभवद् ॥४९३॥

इतश्च मन्त्रिपत्नी सा, पत्युर्विरहपीडिता ।
निन्दन्ती चाऽऽत्मनो नित्यं, गमयामास वासरान् ॥४९४॥

क्षणं भूमौ क्षणं शय्यां, स्थाने द्वारे क्षणं गृहे ।
क्षणं गृहाङ्गणे चाऽस्थाद्, गृहवाप्यां क्षणं वने ॥४९५॥

क्षणं चाऽशोकसंस्तारे, क्षणं च कदलीगृहे ।
रतिं न लभते क्वाऽपि, शून्यचित्ता च सा तदा ॥४९६॥

यूथभ्रष्टा कुरङ्गीव, शफरी जलवर्ज्जिता ।
दवदग्धा मरालीव, शून्यचित्ता तदाऽभवद् ॥४९७॥

स्मारं स्मारं मन्त्रिगुणान्, विललाप सगद्गदम् ।
मुञ्चन्ती दीर्घनिःश्वासान्, लुठन्ती भूमिमण्डले ॥४९८॥

सिञ्चन्ती बाहुलतिकां, हस्तन्यस्त-कपोलका ।
मूर्च्छामतुच्छां सम्प्राप्ता, तदा सौभाग्यसुन्दरी ॥४९९॥

कदापि दैवोपालम्भं, प्रयच्छति कदापि हि ।
आत्मनो दूषणं चाऽपि, चिन्तयन्ती दिवानिशम् ॥५००॥

मयाऽपि गर्व्वो विहित-स्तस्योपरि मुधा पुरा ।
मुद्रिकाऽऽनयनार्थं च, प्रेषितः साम्प्रतं पतिः ॥५०१॥

काले च भोजनं नैव, कुरुते शयनं तथा ।
दुःखं च कुरुते नित्यं, कान्तस्य नृपनन्दिनी ॥५०२॥

एवं दुःखाऽऽतुरां वीक्ष्य, बोधयामास सा सखी ।
भद्रे ! एवंविधं दुःखं, कथं त्वं कुरुषेऽधुना ? ॥५०३॥

ओमेव पण्डिताः कुर्यु-रश्रुपातं च मध्यमाः ।
अधमाश्च शिरोघातं, शोके धर्म्मं विवेकिनः ॥५०४॥

जलबिन्दुसममायु-र्देहः क्षणविनश्वरः ।
कल्लोलचपला लक्ष्मीस्तुच्छा भोगाः शरीरिणाम् ॥५०५॥

हयवेगसमं देवि !, यौवनं रूपमेव च ।
भवस्वरूपमीदृक्ष-मवेहि नृपनन्दने ! ॥५०६॥

आरोग्यं दीर्घमायुष्कं, विभवो गुण-सम्पदः ।
सत्कुलं शुभयोगस्तु, पुण्यादेव हि जायते ॥५०७॥

पापादेव हि जायन्ते, दुःखान्यत्र शरीरिणाम् ।
तेषां सञ्जायते ध्वंसः, पुण्यादेव नृपाऽऽत्मजे ! ॥५०८॥

दुःखं पापात् सुखं धर्म्मात्, सर्व्वदर्शनसम्मतम् ।
अत एव चकोराक्षि !, पुण्यं कुरु समाधिना ॥५०९॥

तथाहि-

"देवपूजा-तपो-दानं, कायोत्सर्ग्गं जपं तथा ।
कर्म्मनिर्घातनार्थं च, कुरु भावयुता सखे ! ॥५१०॥"

"जिनेन्द्रपूजनात् प्राप, सीता कष्टमहोदधेः ।
पारं परं सुदुष्प्रापं, स्थिता राक्षसमन्दिरे ॥५११॥"

"ततश्च पतिसंयोगं, साम्राज्यं सुखसम्पदः ।
पुत्रादीनां च सम्प्राप्ति-मिन्द्रत्वं च भवान्तरे ।५१२।" युग्मम्-

"जिनपूजनतः प्राप, नलस्य दयिता पुनः ।
कष्टमोक्षं सुखाऽवाप्तिं, पतियोगं सनाथताम् ॥५१३॥"

"नर्म्मदासुन्दरी प्राप, जिनपूजनतः पुनः ।
अरण्यकष्टतरणं, कलङ्कस्य विमोचनम् ॥५१४॥"

"जिनेन्द्राऽर्च्चनतः प्राप, दुष्टचित्तोऽपि रावणः ।
तीर्थङ्करत्वं सहसा, भवकोटिसुदुर्लभम् ॥५१५॥"

अर्हद्दासस्य दासेन, प्राप्तं च जिनपूजनात् ।
तत्पुत्रत्वं सुशीलत्वं, महत्त्वममृतं तथा ॥५१६॥

अथ तपः-

"षष्टिवर्षसहस्राणि, कर्म्मविध्वंसहेतवे ।
सुन्दर्या गुणसुन्दर्या, आचाम्लानि वितेनिरे ॥५१७॥"

"ततश्च वाञ्छिताऽवाप्तिं, कर्म्मनिर्मूलनं तथा ।
परमानन्दपदवीं, सम्प्राप साऽपि तत्क्षणाद् ॥५१८॥"

"दुस्तीर्णान्यपि कर्म्माणि, भवकोट्यर्जितान्यपि ।
तपसा च व्यलीयन्ते, तृण्यं वह्निकणादिव ॥५१९॥"

यदुक्तमागमे-

पुव्विं दुच्चिन्नाणं कडाणं कम्माणं मुक्खो अत्थि ।
वेयत्ता नो अवेयत्ता तवसा वां झोसइत्ता वेति ॥५२०॥

यद् दूरं यद् दुराराध्यं यच्च दूरं व्यवस्थितम् ।
तत्सर्वं तपसा साध्यं, तपो हि दुरितापहम् ॥५२१॥

"कष्टं च विलयं याति, तपसश्च प्रभावतः ।
वाञ्छितार्थस्य संसिद्धिर्भवेत्तस्याऽनुभावतः ॥५२२॥"

अथ दानम्-

दानं सौख्यकरं नृणां, दानं चातियशस्करम् ।
भूतप्रेतोद्भगादीनां, वशीकरणमुत्तमम् ॥५२३॥

१. एकं कालेन दूरमपरं क्षेत्रेण ।

"दानेन प्राप्यते कीर्ति-र्दानाद्वैरं प्रयात्यहो ! ।
क्षीयन्ते दुष्टकर्म्माणि, दानपुण्यप्रभावतः ॥५२४॥"

"दानं दुरितनाशाय, दानं स्याच्छान्तये सदा ।
दानेन सद्भोगफलं, तीर्यते च भवाऽर्णवः ॥५२५॥"

"दानप्रभावतः प्राप, धनसारो जिनेशताम् ।
उत्तरोत्तरसौख्यानि, चाऽनुभूय भवे भवे ॥५२६॥"

"सहस्रवरगन्धेभ-सङ्कुलां राजसम्पदम् ।
इहाऽपि मूलदेवोऽपि, लेभे दानप्रभावतः ॥५२७॥"

"साधुदान-प्रसादेन, बाहुना प्रापि तत्क्षणात् ।
चक्रित्वं सुख-साम्राज्य-महोदयरमा तथा ॥५२८॥"

कायोत्सर्गः-

"भर्त्तुः कष्टसमुत्पन्ने, कृता शासनदेवताम् ।
चित्ते मनोरमा तत्र, कायोत्सर्गं व्यधात् तदा ॥५२९॥"

"तत्प्रभावाच्च तद्भर्ता, निर्विघ्नोऽभूच्च तत्क्षणात् ।
ख्यातिश्च महती जाता, तयोः श्रेयश्च सम्पदः ॥५३०॥"

"चन्द्रावतंसकस्याऽपि, कायोत्सर्गेण तत्क्षणात् ।
दुष्कर्ममथनं जातं, संसारस्याऽपि विच्युतिः ॥५३१॥"

"तथा सागरचन्द्रस्य, कायोत्सर्गे पुराद् बहिः ।
जाता च सुरसम्पत्तिः, संसाराऽर्णवपारता ॥५३२॥"

''मुनेर्गजसुकुमारस्य, कायोत्सर्गे स्थितस्य हि ।
कर्म्मनिर्मूलनं जातं, तत्क्षणाद् ध्यानयोगतः ॥५३३॥''

अथ जपः-

''पञ्चानां परमेष्ठिनां, स्मरणं जप उच्यते ।
ततश्च सुख-सम्पत्ति-र्जन्तूनां जायते क्षणात् ॥५३४॥''

तस्याऽयं विधिः-

''प्रत्यूषे च शुचिर्भूत्वा, शुचिवस्त्राऽन्वितः सुधीः ।
निर्व्यञ्जने शुचिस्थाने, आधि-व्याधिविवर्जितः ॥५३५॥''

''तदा पद्माऽऽसनाऽऽसीनो, ध्यायेत्पञ्चनमस्कृतिम् ।
अष्टपत्राऽन्वितं पद्मं, हृदि सञ्चिन्त्य तत्क्षणात् ॥५३६॥'' युग्मम्-

''कर्णिकायामर्हत्पदं, प्राचीपत्रे सिद्धपदम् ।
आचार्याणां पदं याम्या-मपाच्यां पाठकाऽऽश्रितम् ॥५३७॥''

''उदीच्यां साधु-सम्बन्धि, विदिक्षु चाऽपराणि तु ।
इति ध्यातुर्महामन्त्रो, यच्छत्यव्ययमाऽऽस्पदम् ॥५३८॥'' युग्मम्-

''अर्हन्तः शशिवच्छुभ्राः, सिद्धाः विद्रुमसन्निभाः ।
आचार्याः स्वर्णवर्णाऽऽभा, नीलवर्णाश्च पाठकाः ॥५३९॥''

''साधवः श्यामवर्णाश्च, स्वस्वसद्गुणसंयुताः ।
एतैर्वर्ण-गुणैर्ध्याताः, शिवाय परमेष्ठिनः ॥५४०॥'' युग्मम्-

''अथवा विधिना जप्तो, जिनपूजनपूर्वकम् ।
लक्षजापेन मन्त्रोऽयं, प्रयच्छत्यार्हतीं श्रियम् ॥५४१॥''

"अनुलोमैः प्रतिलोमै-र्यो जपेत् लक्षमेककम् ।
महामन्त्रस्य विधिना, क्लेशं तरति सोऽचिराद् ॥५४२॥"

"व्याधयो विलयं यान्ति, क्षुद्रोपद्रवनाशनम् ।
सर्व्वकामाऽर्थसम्पत्ति-र्जायते मन्त्रजापतः ॥५४३॥"

"भूत-प्रेतादयो दोषा, अस्य स्मरणमात्रतः ।
विलयं यान्ति सहसा, वातादिव घनावली ॥५४४॥"

"भोजनाऽवसरे देवि !, स्मरेत् पञ्चनमस्कृतिम् ।
मक्षिकावान्तिकृद्दोषो, न स्यात्तस्य कदाचन ॥५४५॥"

"आश्चर्यं च मया देवि !, दृष्टं तत्स्मरणादपि ।
मण्डले क्षुद्रदेवानां, पात्रं नोऽवतरत्यहो !! ॥५४६॥"

"नमस्कारनरेन्द्रस्य, किमपि प्राभवं स्तुमः ।
यदीयपूत्कृतेनाऽपि, विद्रवन्ति द्विषः क्षणाद् ॥५४७॥"

"व्याघ्रसिंहोरग-व्याला, अन्ये ये दुष्टजन्तवः ।
अस्य स्मरणमात्रेण, शान्तिभावं भजन्ति ते ॥५४८॥"

"चित्ते सन्तापजं दुःख-मस्य स्मरण-मात्रतः ।
विलयं यान्ति सहसा, निदाघो जलदादिव ॥५४९॥"

"अणिमादि-महासिद्धि-र्धृति-श्री-कीर्तिकान्तयः ।
अस्य स्मरणमात्रेण, ध्यातुः स्युः सम्मुखाः पुनः ॥५५०॥"

"इहाऽपि मनसा ध्यातो, विद्याधरनरेशितुः ।
श्रियं यच्छत्यचिरान्नमस्कारो हि कामधुग् ॥५५१॥"

"यथा पुरा शिवश्रेष्ठी, अस्य स्मरणमात्रतः ।
सुवर्णपुरुषं प्राप, तीर्त्वा कष्टमहोदधिम् ॥५५२॥"

"अस्याऽनुभावतो देवि !, श्रीमत्या च घटेऽभवद् ।
भर्त्रा दुष्टेन प्रक्षिप्तः, सर्प्पोऽपि पुष्पमालिका ॥५५३॥"

"नमस्कारप्रभावेन, दुष्टव्यन्तरकाननाद् ।
गृहीत्वा मातुलिङ्गं च, भूपायाऽदाच्च श्रेष्ठिराड् ॥५५४॥"

"नमस्कारप्रभावेन, दवदन्त्या तदा वने ।
हुङ्कारैस्तस्करास्सर्व्वे, निर्य्यिरे च दिशोदिशम् ॥५५५॥"

"नमस्कारं नुमः सिद्धं, यत्पदस्पर्शपूतया ।
पद्माऽऽच्छादितसर्व्वाङ्गं, शान्तिमासादयेद्वरम् ॥५५६॥"

"निर्दयो निस्त्रपो दुष्टश्चौरोऽपि चण्डपिङ्गलः ।
अस्य प्रभावतः प्राप, परत्र नृपपुत्रताम् ॥५५७॥"

"अस्य स्मरणतश्चौरो, हुण्डको यक्षतामगात् ।
शकुनिकाऽपि सञ्जाता, सिंहलनृपतेः सुता ॥५५८॥"

"देवा वैमानिकाः सर्व्वे, व्यन्तरा असुराः पुनः ।
नमस्कारप्रभावेन, भवन्ति वशवर्त्तिनः ॥५५९॥"

"कल्पद्रु-कामकुम्भाद्याः, सेवन्ते तद्गृहाङ्गणम् ।
कण्ठस्थितोऽपि यस्य स्या-न्नमस्कारोऽपि मन्त्रराड् ।५६०।"

"किं स्तवीम्यस्य माहात्म्यं, चिन्ताऽतीतं त्वदग्रतः ।
अस्य प्रभावतो विश्वे, तन्नास्ति यन्न सिध्यति ॥५६१॥"

अत एव महादेवि !, धर्मे श्रीमज्जिनोदिते ।
मतिं कुरु यतस्ते स्यादवश्यं च समीहितम् ॥५६२॥

पुण्यप्रभावतो देवि !, तव विघ्नपरम्पराः ।
विलीयन्ते तमांसीव, प्रचण्डार्कोदयादपि ॥५६३॥

"ततस्तद्वाक्यमाकर्ण्य, हृष्टा सौभाग्यसुन्दरी ।
प्रोवाच सुभगे ! साधु, साध्वहं प्रतिबोधिता ॥५६४॥"

सखी सत्या त्वमेवाऽसि, पूज्या च हितचिन्तिका ।
त्वत्तो नाऽपरः कश्चिद्धितकर्ताऽसि साम्प्रतम् ॥५६५॥

हितमुक्तं त्वया पूर्व्वं, बहुशो हितचिन्तया ।
मया कलाऽभिमानेन, मूर्खिण्याऽप्यवहेलिता ॥५६६॥

त्वदीयं दूषणं नास्ति, किन्तु मत्कर्म्मदूषणम् ।
यदीदृशो मम स्वामी, न ज्ञातो न च रक्षितः ॥५६७॥

यथा केनाऽपि मूर्खेण, प्राप्तश्चिन्तामणिस्तदा ।
अजागले काचधिया, बद्ध्वा सोऽप्यवहेलितः ॥५६८॥

तथा मयाऽपि लब्धोऽसौ, चिन्तामणिनिभः पतिः ।
मूर्खोऽयमिति सञ्चिन्त्य, कथं सख्यवहेलितः ? ॥५६९॥

यथा केनाऽपि मूर्खेण, प्राप्तचिन्तामणिः पुनः ।
वायसोड्डायनकृते, शर्म्मदः कथमुज्झितः ? ॥५७०॥

तथा मयाऽपि ज्ञातोऽसौ, गुणमाणिक्यरोहणः ।
सम्प्रेष्य स्वल्पकार्यार्थं, मूर्खिण्या हारितः कथम्? ॥५७१॥

यादृशं च कृतं ताभ्यां[१], फलं प्राप्तं च तादृशम् ।
मयाऽपि यादृशं कर्म, कृतं प्राप्तं च तादृशम् ॥५७२॥

किं स्यान्ममाऽनुतापेन, सृतं शोकेन मेऽधुना ।
करिष्ये वालनोपायं, त्वदुक्तं धर्म्ममार्हतम् ॥५७३॥

ततो नृपसुता नित्यं, त्रिसन्ध्यं जिनमर्च्चति ।
आचाम्लवर्धमानादि, करोति विविधं तपः ॥५७४॥

दीनाऽनाथादिदुःस्थेभ्यो, दानं यच्छत्यनारतम् ।
कायोत्सर्गं करोत्येषा, क्षुद्रोपद्रवनाशनम् ॥५७५॥

अनुलोम-प्रतिलोमै-र्नमस्कारविचिन्तनम् ।
करोत्येकाग्रचित्तेन, कर्मनिर्मूलनाय च ॥५७६॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

एवं तस्याः प्रकुर्वत्या, जाता षाण्मासिकी तदा ।
ततः पुण्यप्रभावेन, यज्जातं तन्निशम्यताम् ॥५७७॥

इतः सा देवसेनाऽऽख्या, नित्यं तद्रूपमोहिता ।
पिधाय पञ्जरद्वारं, दिवा याति यदा तदा ॥५७८॥

व्यतीतायां च षण्मास्यां, तस्याः पुण्याऽनुभावतः ।
उद्घाटितं च तं मुक्त्वा, पञ्जरं साऽप्यगात् कुतः ॥५७९॥

तं तथाविधमालोक्य, मन्त्री चित्ते व्यचिन्तयत् ।
प्रस्तावोऽयं निर्गमने, कुत्रचिज्ज्ञापने तथा ॥५८०॥

१. काचधिया अजागले बन्धकः चिन्तामणिं तथा वायसोड्डायनकृते उज्झितचिन्तामणिः ।

अन्यथा चाऽत्र दोर्बन्धिः, प्राणमोक्षो भविष्यति ।
अतः किञ्चित् करोम्यत्र, प्रस्तावो दुर्लभः पुनः ॥५८१॥

इति सञ्चिन्त्य वेगेन, पञ्जराद् विवृताऽऽननात् ।
उड्डीय मन्त्रिकीरोऽगाद्, राजकन्यागृहाऽङ्गणम् ॥५८२॥

तत्रत्य- जयसिंहस्य, भूपस्याऽत्यन्तवल्लभा ।
पुत्री (च) कमला नाम्नी, तत्राऽऽसीना गृहाऽन्तरे ॥५८३॥

तत्राऽऽयातं च तं कीरं, वीक्ष्य कन्या मनोहरम् ।
शुकराज ! समागच्छ, बभाषे मत्करे इति ॥५८४॥

श्रुत्वेति शुकराजोऽसा-वोड्डीय तत्कराम्बुजे ।
उपविष्टस्तदैवाऽऽशु, सत्यङ्कारमिवाऽऽत्मनः ॥५८५॥

ततः सा तं शुकं हृद्यं, नयनाऽऽनन्दकारकम् ।
सम्पूर्णाऽवयवं वीक्ष्य, पस्पर्श चाऽन्यपाणिना ॥५८६॥

तं पश्यन्ती समस्ताऽङ्गं, चरणे गुणमैक्षत ।
तं दृष्ट्वा जातकारुण्या, सहसा साप्यऽपाकरोद् ॥५८७॥

अपाकृतो गुणो यावत्, तावन्मन्त्री बभूव सः ।
अभ्रोन्मुक्तरविमिव, तं ददर्श मुहुर्मुहुः ॥५८८॥

तं तथाविधमालोक्य, कमला पुलकाङ्किता ।
साऽनुरागाऽवदद् देव ! किमिदं वद साम्प्रतम् ॥५८९॥

सोऽवदद् देवसेनायाः, सदने पञ्जरान्तरे ।
तिष्ठन्नस्मीति मद्गेहे, वाच्यं देवि ! त्वया द्रुतम् ॥५९०॥

तवाऽभीष्टं करिष्यामि, मुञ्च मां तत्र याम्यहम् ।
मामत्र कोऽपि जानाति, प्रतिज्ञापाशयन्त्रितम् ॥५९१॥

ओमित्युक्त्वा सभया, तथैवाऽऽधाय सोऽमुचत् ।
स पुनर्देवसेनाया, आवासमगमत्ततः ॥५९२॥

तथा तेन कृतं कार्यं, न ज्ञातं देवसेनया ।
सुगुप्तं हि कृतं कार्यं, न च केनाऽपि लक्ष्यते ॥५९३॥

ततश्च कमला-भूप-पुत्री चारुसखीवृता ।
अमात्यदयितागेह-मगात्फुल्लाम्बुजाऽऽनना ॥५९४॥

निन्दन्ती निजदौर्भाग्यं, कृशा दीना विलापिनी ।
यत्राऽऽस्ते मन्त्रिणो भार्या, गत्वा तत्र न्यवीविशद् ॥५९५॥

कथं त्वं कुरुषे दुःखं, पृष्टेति मन्त्रिपत्न्यपि ।
ऊचे दैवेन नटिता, भर्त्रा त्यक्ता करोमि तद् ॥५९६॥

राजपुत्री बभाषे तां, पतिं ते कथयाम्यहम् ।
स्वसारं यदि मां स्वीयां, करोषि सखि ! चेत्तदा ॥५९७॥

इति श्रुत्वा मन्त्रिपत्नी, प्रत्यूचे नृपनन्दिनीम् ।
सर्व्वं तवैव हे शुभ्रे !, मद्भर्त्रे त्वं निवेदय ॥५९८॥

कथितं पुरतस्तस्या-स्तया सख्या निवेदितम् ।
सख्या च नृपतेरुक्त-मेवं शुद्धिः क्रमादभूद् ॥५९९॥

आकार्य देवसेनां तां, राजा पप्रच्छ शुद्धधीः ।
सा निवेद्य यथावृत्तं, प्रकटं तमचीकरद् ॥६००॥

तं दृष्ट्वा मुमुदे राजा, गाढमालिङ्ग्य मन्त्रिणम् ।
पृष्टोदन्तं गृहे निन्ये, महोत्सवपुरस्सरम् ॥६०१॥

राज्याऽर्द्धं कमलासार्धं, भूपोऽदान्मन्त्रिणे पुनः ।
देवसेनां च तां दत्त्वा, प्रेषितोऽसौ गृहं प्रति ॥६०२॥

सौभाग्यसुन्दरी तत्र, कन्याद्वययुतं पतिम् ।
समागतं च तं वीक्ष्य, मुमुदे पुलकाङ्किता ॥६०३॥

ततो वितेनिरे भक्तिं, तादृशीं सा च तं प्रति ।
चन्द्रज्योत्स्नेव तत्सार्द्धं, लोलीभावमुपागता ॥६०४॥

तिसृभिः सह भार्याभि-र्भुञ्जानो राज्यमुत्तमम् ।
विद्याविलासनृपतिः, परां कोटिमशिश्रयद् ॥६०५॥

सर्वस्व-स्वामिनी चक्रे, गुणाऽऽढ्या गुणसुन्दरी ।
सखीत्वेनाऽपि या ख्याता, गौरवाय गुणा यतः ॥६०६॥

दुस्साध्यान्यपि राज्यानि, पार्श्ववर्तीनि तत्क्षणात् ।
वशीचक्रे निजशक्त्या, विद्याविलासभूपतिः ॥६०७॥

अन्यदा रजनीप्रान्ते, विनिद्रस्याऽपि भूपतेः ।
ताताऽग्रे वदितं वाक्यम्, आजगाम स्मृतिं तदा ॥६०८॥

ताताऽग्रे च प्रतिज्ञातं, तद्राज्यग्रहणं प्रति ।
साम्प्रतं शिथिलोऽभूवं, धिग् मे क्लीबस्य चेष्टितम् ॥६०९॥

प्रतिज्ञा क्रियते नैव, क्रियते तर्हि पाल्यते ।
अपाल्यस्य प्रतिज्ञस्य, जीवितान्मरणं वरम् ॥६१०॥

कः कालः कानि मित्राणि, को देशः कुत्र चाऽऽगतिः ।
कश्चाऽहं का च मे शक्तिः, को वा विभवसञ्चयः ॥६११॥

किं तया क्रियते लक्ष्म्या, विदेशगमनेन च ।
अरयो यां न पश्यन्ति, इष्टैर्या नहि भुज्यते ॥६१२॥

प्राप्य चलानधिकारान्, शत्रुषु मित्रेषु बन्धुवर्गेषु ।
नापकृतं नोपकृतं, न सत्कृतं किं कृतं तेन ॥६१३॥

यास्यामि कटकं लात्वा, हत्वा च तं नराधिपम् ।
राज्यं च स्ववशीकृत्य, पित्रे दत्त्वा घनं धनम् ॥६१४॥

प्रतिज्ञां पूरयिष्यामि, स्वकीयां निजशक्तितः ।
इति सञ्चिन्त्य शय्यातश्चोत्थाय नृपतिं ययौ ॥६१५॥ युग्मम्-

नृपं विज्ञप्य प्रबल-चतुरङ्गदलाऽन्वितः ।
विद्याविलासभूपालश्चचालोज्जयिनीं प्रति ॥६१६॥

प्रयाणैरनवच्छिन्नैर्गतस्तद्देशसीमनि ।
आयातमथ तं सैन्यं, विज्ञायाऽवन्तिसेनराड् ॥६१७॥

निर्गत्य सहसा सोऽपि, सम्मुखं तत्र चाऽऽगतः ।
परस्परं महद् युद्धं, तयोश्च समभूत्तदा ॥६१८॥ युग्मम्-

तदा विद्याविलासेन, दृष्ट्वा भग्नबलं निजम् ।
अचिन्ति किमिदं जातं, यद् भग्नं मम सैन्यकम् ॥६१९॥

इति सञ्चिन्त्य रोषेण, जातो रुधिरलोचनः ।
स्वयं डुढौके तं योद्धुं, विद्याविलासभूपतिः ॥६२०॥

समरे परबलं भङ्क्त्वा, निहत्याऽवन्तिसेनकम् ।
जयश्रियं च सम्प्राप्य, गृहीत्वा तद्बलादिकम् ॥६२१॥

संरम्भेण प्रविश्याऽथ, नगराऽभ्यन्तरे तदा ।
विद्याविलासनृपति-र्निविष्टो राजविष्टरे ॥६२२॥ युग्मम्-

न श्रीः कुलक्रमायाता, शासने लिखिता न वा ।
खड्गमाक्रम्य भुञ्जीत, वीरभोग्या वसुन्धरा ॥६२३॥

धृतिमुत्पाद्य लोकाना-मात्मीकृत्य च राजकम् ।
तद्देशे च निजामाऽऽज्ञां, प्रससार महिपतिः ॥६२४॥

ततश्च जयसिंहस्य, शासनात्तस्य मन्त्रिभिः ।
चक्रे विद्याविलासस्या-ऽभिषेकोत्सवमङ्गलम् ॥६२५॥

स्वस्थे जाते निजे राज्ये, सभासीनोऽन्यदा नृपः ।
धनावहेभ्यं पितर-माह्वयामास गौरवाद् ॥६२६॥

कृत्वा विनयमत्यन्त-मासनेऽथ निवेश्य च ।
पप्रच्छ कुशलोदन्तं, पुत्रसङ्ख्यां तथैव च ॥६२७॥

उवाच श्रेष्ठी कुशलं, सन्ति पुत्रास्त्रयः प्रभो ! ।
न्यूनं किमपि नास्त्येव, देव ! सौम्याऽवलोकनाद् ॥६२८॥

ततो राजाप्युवाचैवं, सन्ति पुत्रास्त्रयश्च किम् ? ।
किं वा कोऽप्यधिकोऽप्यासी-न्न वेति वद मत्पुरः ॥६२९॥

ततस्तद्वाक्यमाकर्ण्य, श्रेष्ठ्यूचे च नरेश्वरम् ।
सत्यमेव वदिष्यामि, यद् भाव्यं तद्भवत्वदः ॥६३०॥

अभूत् तुर्योऽपि पुत्रस्तु, सोऽधुना नावगम्यते ।
जीवन्नस्ति मृतः किं वा, यो बाल्येऽपि गृहाद् गतः ॥६३१॥

पुनः प्राह नृपस्तस्य, वृत्तान्तं वेत्सि भो ! न वा ।
नाऽहं वेद्मि नृपो वेत्ति[किं], प्रोवाचेति धनावहः ॥६३२॥

राजा प्राह तवाऽग्रे यां, प्रतिज्ञां तु चकार सः ।
साम्प्रतं तेन साऽपूरि, राज्यमादाय भूपतेः ॥६३३॥

त्वं तातस्तनयः सोऽहं, गृहाणेदं ममाऽर्ज्जितम् ।
राज्यं निजकुटुम्बेन, समं भुङ्क्ष्व यदृच्छया ॥६३४॥

जिनचैत्यानि रम्याणि, जिनबिम्बान्यनेकशः ।
तीर्थोद्धारं तीर्थयात्रां, जिनानामर्च्चनं कुरु ॥६३५॥

निरवद्याऽऽहारपानै-र्वस्त्र-पात्रादिभिः सदा ।
साधूनां संविभागेन, सफलं कुरु जीवितम् ॥६३६॥

साधर्म्मिकवात्सल्यमेवं दीनोद्धरणादिकम् ।
यथेप्सितार्थदानेन, सफलां कुरुत श्रियम् ॥६३७॥

पुत्रवाक्यं निशम्याऽथ, तद्भक्तिमवलोक्य च ।
तद्भाग्यं च निरीक्ष्याऽथ, हृष्टः श्रेष्ठी व्यचिन्तयद् ॥६३८॥

अहो ! निरुपमं भाग्यं, कृतपुण्यस्य चैव हि ।
प्रमाणं पुण्यमेवाऽत्र, यस्मात् फलति सर्व्वतः ॥६३९॥

मम राज्येन किं कार्यं ?, दुःख-दुर्गति-हेतुना ।
करोत्वसौ च पुण्याऽऽत्मा, पुण्यं सर्व्वत्र गीयते ॥६४०॥

श्रीपुरात् श्रीनिवासाऽऽख्यं, तं श्रीमन्त्रीशसम्भवम् ।
आनाय्य मन्त्रिणां मुख्यं, चक्रे तद् भूपतिः स्वयम् ॥६४१॥

स पित्राऽनुमितो राज्यं, पालयन् न्यायवर्त्मना ।
क्रमात्तुर्यं वयः प्राप, पुत्र-पौत्रादिभिर्वृतः ॥६४२॥

इतश्च समये तत्र, ज्ञानशेखरसूरयः ।
चतुर्ज्ञानधरा विश्वं, पावयन्तः समाययुः ॥६४३॥

समायातांश्च ताञ्ज्ञात्वा, गत्वाऽथ सपरिच्छदः ।
नत्वा च विधिना भूपः, शुश्राव देशनामिति ॥६४४॥

धर्म्मो दुःखौघनाशाय, धर्म्मो निर्वृत्तिशर्म्मदः ।
धर्म्मनारकसन्ताप-वारको भवतारकः ॥६४५॥

स चैकधा द्विधा त्रिधा, चतुर्धा पञ्चधा भवेद् ।
बहुधा बुद्धिभेदेन, सर्वज्ञोक्तो भवापहः ॥६४६॥

एकधा स दयामूलो, द्विधा विरति-सञ्ज्ञकः ।
त्रिधा रत्नत्रयाऽऽचारश्चतुर्धा दानकर्म्मणि ॥६४७॥

पञ्चधा यतीनां ज्ञेयः, संयमो दशसप्तधा ।
ध्यान-मौन-क्रियायोगैः, शतधा बहुधा मतः ॥६४८॥

नृजन्म दुर्लभं प्राप्य, सुकुलं साधुसङ्गतिम् ।
यः प्रमादेन नो कुर्यात्, स याति नरकाऽवनिम् ॥६४९॥

अस्मिन्नसारसंसारे, कर्त्तव्यो धर्म्मसङ्ग्रहः ।
अवश्यमेव[हि]यास्यन्ति, प्राणाः प्राघूर्णका इव ॥६५०॥

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः, कर्त्तव्यो धर्मसङ्ग्रहः ॥६५१॥[१]

भोगाः सङ्गा धनं धान्यं, यौवनं क्षणभङ्गुरम् ।
सन्ध्यारागाभ्रच्छायेव, नित्यं संसारचेष्टितम् ॥६५२॥

मूलं बोधिद्रुमस्यैव, द्वारं पुण्यपुरस्य च ।
पीठं निर्व्वाणहर्म्यस्य, निदानं सर्व्वसम्पदाम् ॥६५३॥

गुणानामेकमाधारो, रत्नानामिव रोहणः ।
पात्रं च धर्म्मवित्तस्य, सम्यक्त्वं साध्यते न कैः ॥६५४॥ युग्मम्-

तिर्यग्नरकयोर्द्वारि[२]:, दृढा सम्यक्त्वमर्ग्गला ।
देवमानवनिर्व्वाण-सुखद्वारैककुञ्चिका ॥६५५॥

भवेद्वैमानिकोऽवश्यं, जन्तुस्सम्यक्त्ववासितः ।
यो न चोद्वान्तसम्यक्त्वो बद्धाऽऽयुर्वाऽपि नो पुरा ॥६५६॥

यदुक्तमुपदेशमालायां-

सम्मतम्मि उ लद्धे ठिइयाइं नरय-तिरिय-दाराइं ।
दिव्वाणि माणुसाणि य मुक्खसुहाइं सहीणाइं ॥६५७॥

मिथ्यात्वं परमो वैरी, मिथ्यात्वं परमं विषम् ।
मिथ्यात्वं दुःख-दौर्गत्य-निगोदादि-भव-प्रदम् ॥६५८॥[३]

---

१. सू. मु. ६/१२. २. द्वार् (स्त्री).
३. मिथ्यात्वं परमो रोगो, मिथ्यात्वं परमं विषम् ।
मिथ्यात्वं परमः शत्रुर्मिथ्यात्वं परमं तमः ॥ सु. मु. ५३/१

मिथ्यात्वं त्वं परित्यज्य, कुरु धर्म्मं जिनोदितम् ।
येन ते परमानन्द-पदवी न दवीयसी ॥६५९॥

देशनान्ते नराधीशः, प्रणम्य सूरिपुङ्गवम् ।
पप्रच्छ च मया पूर्व-भवे किं विहितं प्रभो ! ॥६६०॥

येनाऽहं स्वल्पवाक्येन, पितुरुद्वेजकोऽभवम् ।
मूर्खत्वं स्त्रीष्वनिष्टत्वं, प्राप्नुवं राज्य-सम्पदम् ॥६६१॥

सूरयोऽप्यभ्यधुः सर्वं, ज्ञानेन चाऽवगम्य तु ।
यदीच्छाऽस्ति महाराज !, शृणु पूर्वभवं निजम् ॥६६२॥

भरते नन्दिलग्रामे, सुमित्र-प्रियमित्रकौ ।
अभूतां च वणिक्-पुत्रावत्यन्तं प्रीतिशालिनौ ॥६६३॥

यः सुमित्रः स चाऽत्यन्तं विद्वान् शास्त्राब्धिपारगः ।
विशेषतो जिनोक्तेषु, तत्त्वेषु निपुणः सदा ॥६६४॥

रत्नत्रये स्थिरचित्तो, नित्यं तेषु रुचिर्दमी ।
सभ्येभ्यश्चोपदेष्टा च, श्रुतसारं विशुद्धधीः ॥६६५॥

कदाचिन्निरतिचार-सम्यक्त्वं चाथ संयमम् ।
कदाचिन्नवतत्त्वानि, कर्म्मग्रन्थादिकं तथा ॥६६६॥

कदाचिद्देशविरतिं, तपोऽनुष्ठानमेव हि ।
श्रद्धत्ते च स्वयं सम्यगाऽऽख्याति च जनान् प्रति ॥६६७॥

युग्मम्-

पृच्छका बहवस्तत्र, कथकश्च स एव हि ।
विश्राममलभमानो, निर्द्धनत्वादचिन्तयत् ॥६६८॥

किंवाऽनेन श्रुतेनाऽलं, मम क्लेशकरेण च ।
यद्वशात् स्वोदरमपि, पूर्त्तुं नैव च शक्यते ॥६६९॥

अजागलस्तनप्रायै-रुपदेशैर्वृथा मम ।
मुनयश्चोपदेष्टारो, भवन्ति श्रावका न तु ॥६७०॥

धनं विलोक्यते सम्यग्, गृहस्थानां न चाऽऽगमम् ।
धनेन सुखिनः स्युस्ते, न च शास्त्रैः कदापि हि ॥६७१॥

यथाऽयं प्रियमित्रस्तु, ओंकारं वेत्ति नो किल ।
परं द्रव्य-प्रभावेन, सुखभागी च वर्तते ॥६७२॥

यथा केनाऽऽपि मुनिना, कथितं मत्पुरा स्फुटम् ।
ज्ञानस्य विषये सम्यक्, तत्सत्यं प्रतिभाति मे ॥६७३॥

यदुक्तम्-

मूर्खत्वं हि सखे ! ममाऽपि रुचितं यस्मिन् यदष्टौ गुणाः
निश्चिन्तो बहुभोजनोऽत्रपमना नक्तं दिवा शायकः ।
कार्याकार्यविचारणान्धबधिरो मानापमाने समः
प्रायेणामयवर्जितो दृढवपुर्मूर्खः सुखं जीवति ॥६७४॥

इत्यादि चिन्तितेनाऽऽशु, ज्ञानाऽऽवरण-कर्म तत् ।
बद्धं तदा सुमित्रेण, ज्ञानस्याऽऽशातनेन तु ॥६७५॥

घटिका-षट्कप्रमाणं, चिन्तितं तेन तत्परम् ।
पश्चात्तापेन तेनाऽपि, प्रत्युताऽचिन्ति तत्क्षणाद् ॥६७६॥

ज्ञानस्याऽऽशातनाऽकारि, किमिदं चिन्तितं मया ।
सुलभा धनसम्पत्तिर्दुर्लभा ज्ञानसम्पदः ॥६७७॥ यथा-

नानाशास्त्र-सुभाषिताऽमृतरसैः श्रोत्रोत्सवं कुर्व्वताम् ।
येषां यान्ति दिनानि पण्डितजनैर्व्यायामखिन्नात्मनाम् ।
तेषां जन्म च जीवितं च सफलं तैरेव भूर्भूषिता
शेषैः किं पशुवद् विवेकविकलैर्भूभारभूतैर्नरैः ॥६७८॥

इत्यादि चिन्तनेनाऽऽशु, तत्कर्म शिथिलीकृतम् ।
पुनः स तेन विधिना, दिवसानतिवाहयेत् ॥६७९॥

सुमित्रस्याऽपि संसर्गात्, तद्वाक्य-श्रवणादपि ।
सकलत्रः प्रियमित्रो, जिनधर्म्मे दृढोऽभवद् ॥६८०॥

परं निरुपमः स्नेहः, स्त्री-पुंसोश्च तयोरपि ।
अत एव प्रियमित्रो, धर्मे किञ्चित् प्रमाद्यति ॥६८१॥

तं दृष्ट्वा च सुमित्रस्तु, बाढं च हृदि दूनवान् ।
उपदेशमिषात्तेन, तथा किञ्चित् प्रजल्पितम् ॥६८२॥

यथाऽसौ स्वकलत्रेऽपि, बाढं विरागवानभूत् ।
पुनस्तस्योपदेशेन, स्वभावस्थोऽभवच्च सः ॥६८३॥ युग्मम्-

जगृहुश्चारु चारित्रं, कृत्वा च विविधं तपः ।
प्रान्ते समाधिना मृत्वा, प्रापुः देवत्वमुत्तमम् ॥६८४॥

ततः सुमित्रजीवोऽपि, प्रच्युत्वा स्वर्गलोकतः ।
तपसोऽस्य प्रभावेन, श्रेष्ठिसुतोऽभवन्नृपः ॥६८५॥

ज्ञानस्याऽऽशातनाऽकारि, या च पूर्वभवे त्वया ।
घटिकाषट्कप्रमाणा ततस्तस्याऽनुभावतः ॥६८६॥

पितुरुद्वेजकोऽभवः, गृहान्निर्वासितस्तदा ।
विदेशगमनेनाऽपि, दुःखानां भाजनं ततः ॥६८७॥

मासषट्कप्रमाणं चाज्ञानस्य हि व्यथां पुनः ।
मूर्खचट्टाऽभिधानेन प्राप्नोश्च त्वं कदर्थनाम् ॥६८८॥

त्रिभिर्विशेषकम्-

मित्रस्य मित्रभार्यायाः, स्नेहभेदः कृतस्तदा ।
तत्प्रभावान्निज-पत्न्या, अनिष्टस्त्वमभूरिह ॥६८९॥

पश्चात्तापेन तत्कर्म, यत्त्वया शिथिलीकृतम् ।
तस्याऽनुभावतो विद्या-भोगाः प्राप्ताः पुनस्त्वया ॥६९०॥

प्रियमित्रस्य जीवोऽपि, श्रीपुरे मन्त्रिनन्दनः ।
सञ्जातः सुख-साम्राज्य-भाजनं च विशिष्टधीः ॥६९१॥

यस्त्वया धर्म्मदानेन, तस्य चोपकृतं पुरा ।
तेनाऽपि स्त्रीप्रदानेन, तवाऽप्युपकृतिः कृता ॥६९२॥

प्रियमित्रस्य या पूर्वं, पत्नी चाऽभून्मनोहरा ।
तपःप्रभावतो जाता, सेयं सौभाग्यसुन्दरी ॥६९३॥

इति पूर्वभवं श्रुत्वा, जातजातिस्मृतिर्नृपः ।
यद्यथा सूरिणा प्रोक्तं, पश्यति स्म च तत्तथा ॥६९४॥

ततश्चोत्पन्नवैराग्यो, गुरुं विज्ञापयत्यदः ।
देहि दीक्षां च शिक्षां च, भवोदधितरीनिभाम् ॥६९५॥

गुरुणाऽभिदधे चैवं, प्रमादो मा विधीयताम् ।
ततोऽसौ स्वगृहे गत्वा, पुत्रं राज्यं प्रदत्तवान् ॥६९६॥

विद्याविलासनृपतिः, पत्नीभिस्तिसृभिस्सह ।
राजपुत्रशतैः सार्धं, प्रव्रज्यां च समुपाददे ॥६९७॥

ग्रहणाऽऽसेवनां शिक्षां, सम्प्राप्य गुरुसन्निधौ ।
विनयाद्यैः श्रुतं गृह्णन्, गीतार्थः समभूत्तदा ॥६९८॥

सेहे परीषहानुग्रान्, स तेपे दुस्तपं तपः ।
जग्राहाऽभिग्रहान् चारु, चारित्रं पर्यपालयत् ॥६९९॥

शुक्लध्यानाग्निना तेन, घातिकर्म्मचतुष्टयम् ।
भस्मीकृतं तदा सोऽपि, प्राप केवलमुज्ज्वलम् ॥७००॥

भव्याब्जान्यपि सम्बोध्य, केवलज्ञानभास्वता ।
प्रान्ते शिवपदं प्राप, विद्याविलाससाधुराट् ॥७०१॥

सौभाग्यसुन्दरीमुख्यास्तिस्त्रोऽपि तद्वरास्त्रियः ।
प्रपाल्य चारु चारित्रं, शिवं प्रापुः क्रमेण च ॥७०२॥

मन्त्री लक्ष्मीनिवासाऽऽख्यः सा सखी गुणसुन्दरी ।
गृहीत्वा चारुचारित्रं, परिपाल्य च शिवं ययौ ॥७०३॥

विद्याविलासनृपतेश्चरित्रं निशम्य,
श्रेयस्करं सकल-दुःखहरं नितान्तम् ।

यद्यस्ति भो शिववधू-करपीडनेच्छा,
श्रद्धा-रुचौ तदिह भव्यजना ! यतध्वम् ॥७०४॥

इति विद्याविलासकथानकं समाप्तम् ॥

१५४१ वर्षे, मार्गशीर्षे मासे, श्रीब्राह्मीस्थाने,
श्रीजिनसमुद्रसूरिविजयराज्ये श्रीमद्कीर्तिरत्नसूरिराजानां
शिष्येण हर्षविशालगणिना (लिखितम्)

• • •

शब्दकोष

अंशुमालिन्	- सूर्य
अङ्गज	- शरीर पर उत्पन्न हुआ
अजिर	- आंगन
अनघ	- निर्दोष
अनवच्छिन्न	- निरन्तर
अनुगुणा मता:	- अनुकुल, मानने वाले (लोग)
अनुमित	- अनुमति दिया हुआ
अन्वहम्	- प्रतिदिन
अपाकृत	- दूर किया हुआ, निकाला हुआ
अपाची	- पश्चिम दिशा
अभिजन	- कुल
अभियोग	- प्रयत्न
अमोघम्	- अनिष्फल
अर्गला	- किवाड
अर्यमन्	- सूर्य
अविदग्धता	- अचतुरता, अपंडितता
आचमन	- भोजन के पूर्व-पश्चात् हथेली में जल लेकर घूंट-घूंट करके पीना, कुल्ला करना
आच्छादन	- वस्त्र
आज्य	- घी
आतृ(तु)धुरि	- काष्ठ के चमडे पर
आतोद्य	- वाजित्र
आयत्त	- आधीन
आसाद्य	- प्राप्त करके
आसूत्र्य	- क्रमबद्ध करके
इन्द्रवारुणी	- किंपाक फल
उत्कर्ष	- अहंमन्यता, बढाई
उत्कीर्ण	- खुदा हुआ
उत्तारयन्ति	- उतारते है।
उदन्त	- वृत्तान्त
उदीची	- उत्तर दिशा
उद्गार	- बार बार कहना - मन्त्रित करना
उद्वेजक	- उद्वेग करने वाला
उन्मुक्त	- खुलना, छुटना
उपनेता	- नायक
ओकस्	- महल, घर
कज्जल	- काजल
कटक	- सैन्य
करीर	- काँटेदार वृक्ष जो मरुस्थल में पैदा होता है तथा जिसे ऊँट खाते है।
कर्कटी	- ककडी (काकडी)
कर्णिका	- कमल का कोष
कर्मठ	- आरम्भ किया हुआ कार्य पूर्ण करने वाला
कर्मनियोगिनी	- दासी
कल्लोल	- तरंग
कषोपल	- कसौटी पत्थर
कान्दिशीक	- कौनसी दिशा में भाग जाऊं इस प्रकार विचारने वाला

कामधुग्	- कामधेनु
कुलाङ्गार	- कुल को भस्म करने में अंगारे के समान
कृतिन्	- पण्डित
केतकीदल	- केवडे का पत्ता
कोविद	- पंडित
क्लीब	- नपुंसक
क्षण	- उत्सव
क्षम	- समर्थ
क्षाराब्धि	- लवण समुद्र
क्षीरोद	- क्षीर समुद्र
खज्ज	- खाजा
गन्तार	- जाने वाले
गभस्ति	- सूर्य
गुण	- डोरी
गोष्ठिका	- सभा, पर्षदा
गौरव्य	- गौरव करने योग्य
घन	- बादल
घनावली	- बादलो की श्रेणी
घृतपूर	- घेवर
चपेटा	- थप्पड
चिन्ताजुष्	- चिन्तायुक्त
जम्बुक	- गीदड
जिनेशितृ	- जिनेश्वर
डम्बर	- आडम्बर
तटी	- नदी
तत्रत्य	- वहाँ उत्पन्न, वहाँ का,
तापक	- सूर्य
तुर्य	- चौथा
तृण्यं	- तृण का समूह
त्रपा	- लज्जा
त्रिकचतुष्क	- तिराहा, चौराहा
दधिवद्य	- भोज्य पदार्थ विशेष
दर्दुर	- मेंढक
दवरक	- डोरी
दवीयस्	- अत्यन्त दूर
दशकन्धर	- रावण
दिनमणि	- सूर्य
दुरित	- पाप, अशुभ
दुरितापह	- पाप का नाश करने वाला
दुर्दैव	- दुर्भाग्य
दुस्थाशय	- विषण्ण, दुःख, अशांत मनवाला
दोग्धी	- दूध दोहने का भाजन
धनदायते	- कुबेर के समान आचरण करता है
धनदोपम	- कुबेरस्य उपमा यस्य सः
धुरा	- कार्यभार, धुरा
धुर्य	- अग्रणी
नक्र	- मगरमच्छ
नग	- पर्वत
नतक्रम	- चरणों में नमस्कार करने वाला
नयभवः	- न्याय से उत्पन्न
नागेन्द्र	- ऐरावतहाथी
निदाघ	- ग्रीष्म ऋतु
निर्दाक्षिण्य	- अनुदारता, अचतुरता
निर्द्धमन	- खाल, मोरी, पानी जाने का रास्ता
निर्व्यञ्जन	- एकान्त
निशानाथ	- चंद्र
निशित	- तीक्ष्ण
नेपथ्य	- वेष
न्युञ्छन	- नजर उतारना

पट्टक - लिखने के लिए बडी तख्ती
पट्टिका - पाटी
पद्य - पद
परिकर - परिवार
परिवाद - निन्दा
परिवेषण - परोसना
पलाण्ड - प्याज
पाठक - उपाध्याय
पाद्रदेवी - ग्राम-देवता
पारापत - कबूतर
पूर्यापूण्या - पोरन पूरी
पूर्वाशा - पूर्व दिशा
पृथुका - पौंआ
प्रगुणीकुरु - सज्ज हो, तैयार हो
प्रगे - सुबह
प्रतिपच्चन्द्रलेखा - प्रतिपदा(एकम)के चन्द्र की कला
प्रतोली - शेरी
प्रत्यासत्तिम् - समीपता
प्रत्युत - उल्टा
प्राघुर्णक - मेहमान
प्राचि - पूर्व दिशा में
प्राभव - सर्वोपरिता
फलहली - भोज्य पदार्थ विशेष
फेनिका - फेनी
बल - सैन्य
बालिश - मूर्ख
भरतशास्त्र - भरत नामक प्राचीन मुनि जो नाट्यकला तथा संगीतविद्या के प्रवर्तक माने जाते है उनके द्वारा बनाया गया शास्त्र

मकराकर - मगरमच्छ की खान(समुद्र)
मण्डक - रोटा
मण्डल - देश, परिधि
मण्डिका - रोटी
मत्कुण - मांकड, खटमल
मन्त्रज्ञ - रहस्य को जानने वाले
मन्द - प्रमादी
मन्दिर - घर
मराल - हंस
मातुलिंग - बीजोरा
मारि - विनाश, मारना
मिष - बहाना
मुरज - एक प्रकार का मृदंग या ढोल
मुरूक्किका - पक्वान्न विशेष
मूर्त्तिमती - साक्षात् मूर्त
मृणाली - कमल की नाल
मेदिनी - पृथ्वी
मौक्तिकमोदक - मोतीचूर
यथातथा - जैसे-तैसे
यथावृत - जिस प्रकार घटा हुआ
यदृच्छया - इच्छानुसार
यान - जाना
यामिनी - रात्री
याम्य - दक्षिण
रहस् - एकान्त
राजक - राजाओं का समूह
र्निविष्ट - बैठा
लतिका - लता
लपनश्री - लापसी
लास्य - नृत्य

लेखशालिन् - विद्यार्थी
लोलीभाव - एकमेक होना
वत्सर - दिन
वपुष्मती - शरीर वाली
वल्लरी - लता
वानेय - वन में उत्पन्न हुआ
वामभ्रू - स्त्री
वावदूक - वाचाल
विग्रह - शरीर
विचेतन - चेतना रहित
विच्युति - नाश
विच्युति - वियोग, मरण
वितत्य - प्रसारित कर
विद्रुम - प्रवाल
विधित्सा - करने की इच्छा
विनिद्रा - जागना
विभावरी - रात्रि
विवृताऽऽनन - खुले मुख वाला
विश्रुत - प्रसिद्ध
विषण्ण - खिन्न
विष्टर - आसन
विसंस्थुला - असम, अस्थिर
वृत्त - वृतान्त
वृत्ति - वाड
वृन्त - डंठल
वैदग्धी - चतुरता
व्यक्ति - प्रकटपन
व्याल - चीता
व्याल - सर्प, चीता
शकुनिका - पक्षिणी
शङ्कु - कटार
शफरी - मछली
शर्मन् - सुख, आनंद
शालूर - मेंढक
शासन - आज्ञा
शुद्धिमात्र - खबर भी
शैल - पर्वत, बडा भारी पत्थर
श्येन - बाज
श्रुति - कान
श्लाघ्य - प्रशंसा करने योग्य
संरम्भ - आडम्बर, उत्साह
संस्तार - बिस्तर
सक्षार - खारा
सत्यङ्कार - प्रतिज्ञा
सद्मन् - घर, मंदिर
सन्निभ - समान
सन्निहित - समीप में रहा हुआ
सपरिच्छद - सपरिवार
समीहित - इच्छित
सरट - वायु
सविच्छाय - करमाया(म्लान)हुआ
साधीयान् - अत्यन्त सुंदर
सारि - शतरंज का मोहरा
सारिणी - नहर, नाली, नदी
सुखभक्षिका - सुखडी
सौहार्द - मित्रता
स्मरालय - कामदेव का मंदिर
स्मारं स्मारं - स्मृत्वा, स्मृत्वा
हय - घोडा
हर्म्य - महल
हुतभुक् - अग्नि
हृद्य - मनोहर, सुन्दर
हेला - क्रीडा

●●●

श्री कीर्तिरत्नसूरि विरचितम्

अथ विद्याविलासकथानकम्

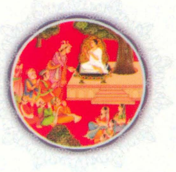

: प्रकाशक :

गुरुश्रीरामचन्द्र प्रकाशन समिति - भीनमाल

KIRIT GRAPHICS
09898490091